द्वितीय अंक

वर्ष 1 अंक 2
जुलाई-दिसम्बर, 2019

कृषि-जीवन

बुन्देलखण्ड कृषि इन्द्रधनुषी क्रांति की ओर अग्रसर..........

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284 003 (उ.प्र.) भारत

कृषि जीवन

अंक - 02, संख्या - 02

जुलाई, 2019

संरक्षक

डॉ. अरविन्द कुमार

कुलपति

मुख्य संपादक

डॉ. अनिल कुमार

निदेशक शिक्षा

संपादक सलाहकार

डॉ. एस.के. चतुर्वेदी

(अधिष्ठाता कृषि संकाय)

डॉ. ए.के. पाण्डेय

(अधिष्ठाता कृषि एवं वानिकी)

डॉ. ए.आर. शर्मा

(निदेशक शोध)

डॉ. मुकेश श्रीवास्तव

कुलसचिव

डॉ. कुसुमाकर शर्मा

सलाहकार

संपादक मण्डल

डॉ. एन.के. सिंह

डॉ. दिनेश पाण्डेय

डॉ. सुप्रिया गुप्ता

(गो.ब.पं.कृ. एवं प्रौ.वि.वि., पंतनगर)

डॉ. रमेश सिंह

(के.कृ.अनु.सं., झाँसी)

डॉ. मीनाक्षी आर्य

डॉ. प्रभात तिवारी

डॉ. अमित तोमर

(रा.ल.बा.के.कृ.वि.वि., झाँसी)

पत्रिका में प्रकाशित लेख एवं विचार लेखकों के अपने निजी है। संपादक, प्रकाशक की सहमति और उत्तरदायी होना अनिवार्य नहीं है। लेख में लेखक का पूरा पता प्रकाशित किया जाता है। अतः कोई भी जानकारी लेखक से भी ली जा सकती है।

निदेशक शिक्षा

ई–मेल : directoreducation.rlbcau@gmail.com

सूची

कुलपति जी की कलम से

संपादकीय : क्या सम्भव है अन्नदाता की आय को दोगुना करना?

इस अंक में :

1. जैविक ग्रामः किसानों की आय वृद्धि में सहायक होगा ग्रामीण विकास का एकीकृत माडल
2. आखिर कैसे होगी किसानों की आय दोगुनी?
3. उपज का अच्छा मूल्य पाना है तो अपनानी होगी जैविक खेती
4. जैविक कृषि द्वारा पादप रोग प्रबंधन : मिट्टी की गुणवता में वृद्धि एवं बेहतर पर्यावरण
5. कृषि आय को दोगुना करने वाली कम लागत की तकनीकें
6. उत्तर प्रदेश में किसानों की आय वृद्धिः पशुधन और कुक्कुट पालन का योगदान
7. बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए समेकित भेड़ एवं बकरी का पालन : एक समीक्षा
8. बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में कृषक समृद्धि हेतु उन्नत चारा उत्पादन तकनीक
9. बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खरीफ की सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका उपचार
10. बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये अरहर की उपयुक्त प्रजातियाँ एवं उत्पादन तकनीक
11. रोजगार और पोषण की संभावना के लिए सोयाबीन पर आधारित उद्यम

द्वारा प्रकाशित : शिक्षा निदेशालय,

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी - 284003 (उ.प्र.) भारत

कॉपीराइट : रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी

कुलपति जी की कलम से...............................

कृषि ही मानव जीवन का आधार है और किसान न केवल अन्नदाता अपितु हजारों वर्षो से कृषि सभ्यता को गढ़ने एवं बढ़ाने में लगा रहा। पिछले वर्ष तो हमारे किसानों ने अपने अथक परिश्रम से खाद्यान्न और फल–सब्जियों का रिकार्ड उत्पादन किया जितना पहले कभी नहीं हुआ। ये हमारे देश के किसानों का सामर्थ्य है कि सिर्फ एक साल में देश में दाल का उत्पादन लगभग 17 मिलियन टन से बढ़कर 23 मिलियन टन हो गया। पिछले कुछ वर्षां में कृषि और बागवानी उत्पादन में वृद्धि के बाबजूद, आर्थिक संकेतक किसानों की आय में न्याय संगत और समानतापूर्ण वृद्धि नहीं दर्शा रहे है। रिपोर्ट में कहा गया है "कृषि की इस स्थिति के पीछे मानवीय कारक है। किसान द्वारा लगातार उत्पादकता और उत्पादन बढ़ाने के बाबजूद कृषि क्षेत्र, संकट की स्थिति में है। कृषि गतिविधियों से आय में वृद्धि की माँग, सरकार द्वारा खरीद सुनिश्चित करने और उचित लाभ प्रदान करने की माँग में तब्दील हो रही है।"

बुन्देलखण्ड क्षेत्र की विकट परिस्थिति को देखते हुये यहाँ के किसानों की दशा भी बद से बदत्र होती जा रही है। अतः केन्द्र सरकार ने 2022 तक किसानों की आय दोगुना करने का लक्ष्य रखा है। इसके लिये केन्द्र एवं राज्य सरकारें तमाम योजनाओं के माध्यम से किसानों के हित में कार्यक्रम शुरू कर रही है। इसके साथ ही हमें सोचना होगा कि वर्तमान एवं पुरानी परिस्थितियों में क्या अन्तर था? जिससे किसानों की आय दिनों दिन कम होती गयी। इसी दृष्टि एवं सोच से नये रास्ते एवं रणनीति से काम करने का तरीका सूझता है। किसानों की आय दोगुनी करने के कई सूत्र है जिनमें मुख्यतः पहला सूत्र यह है कि किसान इस तरह से खेती करे कि उनकी लागत कम से कम हो, दूसरा वैज्ञानिक तरीके से खेती करे जिससे अधिक उत्पादन हो और अन्तिम सूत्र कृषि उत्पादों का मूल्य संवर्धन करें जिससे बाजार में किसानों को उचित मूल्य प्राप्त हो। अतः इन्ही सूत्रों को ध्यान में रखते हुये किसानों की आय वृद्धि के आधार पर "टिकाऊ मॉडल" बनाने की अत्यन्त आवश्यकता है जो बेहतर कृषि निवेश एवं बेहतर बाजार से सम्बन्ध को स्थापित कर सके। दो या दो से अधिक फसलों के साथ बागवानी, पशु–पालन, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, मधुमक्खी पालन, रेशम कीट पालन, मशरूम उत्पादन इत्यादि को सम्मिलित किया जाना चाहिये। इसी प्रकार खाद्य प्रसंस्करण को अपनाकर कृषि उत्पादों का अधिकाधिक मूल्य एवं लाभ प्राप्त किया जा सकता है। इन उपायों से कृषि क्षेत्रों को लाभप्रद बनाने और इसकी आर्थिक दशा सुधारने से किसानों की आय दोगुनी की जा सकेगी।

आशा ही नहीं अपितु पूर्ण विश्वास है कि कृषि जीवन के दूसरे अंक में सम्मिलित कृषि विद्वानों के लेख, इस दिशा में नये आयाम प्रस्तुत करेंगें। मैं, डॉ. अनिल कुमार के नेतृत्व में सम्पादकीय मण्डल के समस्त सदस्यों की सराहना के साथ समस्त पाठकों का भी आभार, जिनके सुभावों से इस पत्रिका को निरन्तर सुधारने एवं संवारने में मदद मिलेगी।

(अरविन्द कुमार)
कुलपति

सम्पादकीय

क्या सम्भव है अन्नदाता की आय को दोगुना करना?

प्राचीन भारत की "सर्वसुलभ–समृद्धि कृषि" जिसको देखकर विदेश से आये हुये लोग भी हैरान रह जाते थे। इतनी उन्नत व्यवस्था, उन्नत तकनीक एवं वैज्ञानिक आधारित हमारी कृषि ने पूरे विश्व को बहुत कुछ सिखाया। फिर ऐसा क्या हुआ कि गुलामी के लम्बे काल खण्ड में ये सारा अनुभव, कृषि को लेकर हमारी बनाई हुई सारी व्यवस्थायें ध्वस्त हो गयी। स्वतंत्रता के बाद, दाने–दाने को तरस रहे हमारे देश के किसानों ने अपना खून–पसीना बहाकर एवं देश के वैज्ञानिकों की कड़ी मेहनत के कारण हम खाद्यान्न उत्पादन में आत्म निर्भर हो गये। हरित क्रान्ति के इस दौर में कृषि क्षेत्र का उत्तरोत्तर विकास हुआ, लेकिन किसान का अपना व्यक्तिगत विकास और सिमट गया। खेती से आमदनी दूसरी क्षेत्रों की तुलना में कम हुई और आने वाली पीढ़ियों ने खेत में हल चलाना छोड़कर, छोटी–मोटी नौकरी करने हेतु गाँवों से शहरों की तरफ पलायन शुरू कर दिया। कभी–कभी किन्ही क्षेत्रों में खेती में घाटा होने के कारण वहाँ के किसानों ने आत्महत्या करने जैसे भी कदम उठा लियें। अतः अन्नदाता किसानों जिन्होंने देश को खाद्य–सुरक्षा प्रदान की उनकों अपनी आमदनी के लाले पड़ गये।

सन् 2018 में प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने साल 2022 तक किसानों की आय दोगुना करने का लक्ष्य रखा। इसमें कोई संदेह नहीं है कि यह एक महत्वाकांक्षी उद्देश्य है और इसके लिये बहुआयामी रणनीति की आवश्यकता है। इसमें प्रभावशाली नीतियों के साथ आधुनिक कृषि तकनीकों एवं ग्रामीण आधारित जैव तकनीकों का विकास करना भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। केन्द्र सरकार ने किसानों की आमदनी बढ़ाने के लिये बीज से बाजार तक फैली श्रृंखला में नीतियों का सरलीकारण किया है एवं आय को दोगुना करने का लक्ष्य हासिल करने के लिये प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना, प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना परम्परागत कृषि विकास योजना, मृदा स्वास्थ्य कार्ड योजना, नीम लेपित यूरिया तथा इलेक्ट्रोनिक राष्ट्रीय कृषि बाजार ई–नाम जैसी कई योजनाओं की शुरूआत की है। इसके अतिरिक्त छोटे एवं मध्यम जोतो (5 एकड़ से कम?) के किसानों को संकट से उबारने के लिये रू. 6000/प्रतिवर्ष प्रति किसान प्रोत्साहन राशि को सीधे बैंक के खातों में अन्तरण किया जा रहा है। ये पहली बार ऐसा हो रहा है कि पहले सिर्फ कृषि के बारे में सोचा जाता था लेकिन अब किसानों के बारे में सोचा गया है। ताकि उनकी आय एवं कृषि में लाभ बढ़ाकर वह समृद्ध हो सके। किसानों को उनकी फसल की उचित कीमत मिले इसके अन्तर्गत उनकी फसलों का कम से कम यानि लागत के ऊपर 50 प्रतिशत यानि डेढ़ गुना मूल्य सुनिश्चित करने का केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकार के सहयोग से लिया है।

इसके अतिरिक्त, विज्ञान, तकनीकों एवं नया ज्ञान भी किसानों की दशा एवं आजीविका वृद्धि करने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दे सकता है। अतः आवश्यक है कि हम छः स्तरों पर ध्यान दें। पहला– उत्पादन वृद्धि, दूसरा– उत्पादन लागत कम करने, तीसरा– पैदावार की उचित कीमत, चौथा– मार्केट की उपलब्धता, पाँचवा– खेत से बाजार तक पहुँचने के बीच फसलों–फलों एवं सब्जियों की बर्बादी को रोकना और छठवाँ– ऐसे मॉडल, संस्तुतियाँ एवं पद्धतियाँ, जिनसे किसानों की अतिरिक्त आय की व्यवस्था हो सके। इसी को ध्यान में रखते हुये केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय पूर्ण रूप से सजग है और अपने कार्यक्रमों में समन्वित रूप से एकीकृत रोग प्रबन्धन, एकीकृत पोषक प्रबन्धन एवं एकीकृत खेती प्रबन्धन के क्षेत्र में अपना कार्य विस्तार कर रहा है एवं बुन्देलखण्ड की जलवायु के अनुकूल बीज, सिंचाई, खाद, अन्य कृषि प्रॉडक्टस तथा मॉडल विकसित किये जायेगे।

विश्वविद्यालय की प्रकाशन श्रृंखला में कृषि जीवन के दूसरे अंक को सौंपते हुये अत्यन्त हर्ष हो रहा है। इस अंक में, विभिन्न संस्थानों एवं विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों एवं संकाय सदस्यों के बहुमूल्य लेख जो कि बुन्देलखण्ड के किसानों की आय को दोगुना करने से सम्बन्धित है और ये लेख, निश्चित तौर पर किसानों, शिक्षकों एवं विद्यार्थियों को प्रेरित करेंगें एवं एक नई जागरूकता से बुन्देलखण्ड के किसानों की आय बढ़ाने में अपना योगदान देंगे।

(अनिल कुमार)
मुख्य सम्पादक

विषय सूची

क्रं.स.	विषय पेज	पृष्ठ सं.
1.	जैविक ग्रामः किसानों की आय वृद्धि में सहायक होगा ग्रामीण विकास का एकीकृत माडल *अनिल कुमार*	1
2.	आखिर कैसे होगी किसानों की आय दोगुनी? *वी.के. सचान*	4
3.	उपज का अच्छा मूल्य पाना है तो अपनानी होगी जैविक खेती *डॉ डी.एस. श्रीवास्तव*	8
4.	जैविक कृषि द्वारा पादप रोग प्रबंधन : मिट्टी की गुणवता में वृद्धि एवं बेहतर पर्यावरण *रेखा बलोदी, नीतीश रतन भारद्वाज, रीतु, महर्षि तोमर एवं सुनैना बिष्ट*	11
5.	कृषि आय को दोगुना करने वाली कम लागत की तकनीकें *डॉ. आर.एस. सेंगर*	14
6.	उत्तर प्रदेश में किसानों की आय वृद्धिः पशुधन और कुक्कुट पालन का योगदान *आर.के. सिंह, महेश चंद्र एवं पीयूष कांति मुखर्जी*	19
7.	बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए समेकित भेड़ एवम बकरी का पालन :–एक समीक्षा *राजीव कुमार, अमर सिंह मीना एवं अरूण कुमार*	23
8.	बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में कृषक समृद्धि हेतु उन्नत चारा उत्पादन तकनीक *उमेश सिंह, संजीव भला, डी.एन. आर्या, श्याम प्रकाश, संजय मोहन गुप्ता एवं मधु बाला*	26
9.	बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खरीफ की सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका उपचार *मनोज कुमार पाण्डेय, अजित कुमार चतुर्वेदी, गोविन्द कुमार चौधरी, रूदल प्रसाद चौधरी एवं प्रभाश चन्द्र सिंह*	31
10.	बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये अरहर की उपयुक्त प्रजातियाँ एवं उत्पादन तकनीक *डॉ. एस.के. वर्मा*	40
11.	रोजगार और पोषण की संभावना के लिए सोयाबीन पर आधारित उद्यम *डॉ. ललन के. सिन्हा एवं डॉ. (सुश्री) नीरजा ललन*	43

जैविक ग्राम: किसानों की आय वृद्धि में सहायक होगा ग्रामीण विकास का एकीकृत माडल

प्रोफेसर (डॉ.) अनिल कुमार, निदेशक शिक्षा

सारांश : कृषि क्षेत्र को लाभप्रद बनाने और इसकी आर्थिक दशा सुधारने के उपाय जिससे किसानों की आय दोगुनी करने का प्रयास हो सके। ये उपाय है खाद्य सुरक्षा, स्वास्थ्य सुरक्षा, ऊर्जा सुरक्षा, जल सुरक्षा, पर्यावरण सुरक्षा जैविक कृषि तथा कृषि में महिलाओं एवं युवाओं की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसके लिये यह जरूरी है कि एक ग्रामीण विकास का एकीकृत मॉडल को प्रतिपादित किया जाये जिससे न केवल किसानों की आय वृद्धि होगी अपितु समस्त गाँवों को आत्मनिर्भर भी बनाया जा सकता है। इसके लिए आवश्यकता है कि एक केन्द्र कि स्थापना की जाये जहाँ छोटी जोत वाले 25.25 कृषकों के समूहों को जैविक ग्राम अथवा घाटी बनाने हेतु प्रशिक्षित किया जा सके। इस मॉडल के अंतर्गत, गाँवों में 30 एकड़ भूमि पर 25 ग्रामवासियों की आजीविका हेतु संसाधनों के समुचित उपयोग हेतु, जैव प्रौद्योगिकी एवं ग्रामोन्मुखी तकनीकों के माध्यम से आत्मनिर्भर बनाए जाने का उचित वातावरण एवं प्रशिक्षण की व्यवस्था की जा सके। प्रत्येक गाँव से युवा किसानों एवं मजदूरों जिनके पास जीविकोपार्जन के लिए एक एकड़ से भी कम जमीन है, के समूह बनाकर वैज्ञानिक तकनीकों का समुचित प्रशिक्षण दिया सकता है एवं मुख्य प्रशिक्षक तैयार कर ग्रामीण प्रबन्धन की उपरोक्त सुरक्षाओं एवं विधाओं को लागू किया जा सकता है, इससे न केवल गाँव खुशहाल होगें अपितु कृषि प्रधान देश में गाँवों को सशक्तीकरण से भारत की आर्थिक रीढ़ को मजबूत बनाने में सहायक होंगे। आवश्यकता इस बात की है कि इस प्रकार से तैयार ग्रामीण प्रबन्धक प्रत्येक गाँव के विकास में सक्रियता से जुटकर भूमिका निभाते है तो हमारी **ग्राम अभ्युदय देश अभ्युदय** की संकल्पना साकार हो सकेगी।

प्रस्तावना :

भविष्य के कदमों की आहट को जिस किसी ने भी सुना है उन सबका यही कहना है कि आने वाले कल में यदि गाँव नहीं रहेंगे तो विश्व की स्थिति भयानक व अकल्पनीय होगी। नगरों का बेहतरीन एवं अनियंत्रित विस्तार (कंक्रीट का जंगल), पर्यावरण संकट की उत्पत्ति का मुख्य कारक है। नगरों की यह वृद्धि सम्पूर्ण विश्व में संकट की तरह मंडरा रही है ऐसी स्थिति में गाँवों के समुन्नत विकास करने की अत्यन्त आवश्यकता है।

अथर्ववेद में एक श्लोक आता है, **विश्वं पुष्टं ग्रामें अस्मिन अनातुरम्"** जिसका भाव है जिस प्रकार विश्व अपने आप में सम्पूर्ण रुप से परिपूर्ण है उसी प्रकार गाँव भी समर्थ और चिन्ता व परेशानी से मुक्त हो एक समग्र इकाई के रुप में विकसित होकर स्थापित हों।

इसी को ध्यान में रखते हुए, ग्रामीण विकास हेतु एक एकीकृत मॉडल जो कि आदर्श ग्रामों को विकसित करने के लिए तैयार किया गया है। जिससें न केवल गाँव पूर्णतः आत्मनिर्भर होगे, वरन वे राष्ट्र के विकास दर में भी अग्रणी भूमिका निभा सकेंगे। इस योजना में गाँव में उपलब्ध संसाधनों के द्वारा कृषि उत्पादकता में वृद्धि एवं कौशल विकास कर ज्यादा से ज्यादा मानव संसाधन का निर्माण करना व ग्रामीण विकास के अनेकों क्षेत्रों में शोध कर, आदर्श ग्राम व समुन्नत राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त करने पर केन्द्रित किया गया है।

वैज्ञानिकों का मानना है कि चूँकि देश की 70 प्रतिशत जनता गाँवों में निवास करती है अतः ग्रामोत्थान के बिना राष्ट्र का उत्थान असंभव है, इसलिये इन वैज्ञानिकों ने राष्ट्र निर्माण में उत्तरदायित्व को समझते हुए भारत के गाँवों को विकसित करने की पहल की है। जब पश्चिमी सभ्यता में औद्योगिक विकास तेजी से बढ़ रहा था, तभी महान वैज्ञानिक आइंसटीन ने पश्चिम के औद्योगिकीकरण को सावधान करते हुए कहा था कि

''वैज्ञानिक विकास उचित है परंतु यह ध्यान रखा जाना चाहिये कि यह विकास प्रकृति के साथ तारतम्य पूर्ण होना चाहिए न कि प्रकृति का विरोधी''।

ऐसा प्रतीत होता है कि हमारे पुरातन काल के मनीषियों ने इस बात को समझ लिया था प्रकृति का दोहन वही तक होना चाहिए, जिसकी भरपायी प्रकृति स्वयं कर सकें इसीलिए भारतीय दर्शन में प्रकृति की पूजा होती है, वृक्षों को देव माना गया, नदियों को माता तथा पर्वतों को देव स्थल, हर गाँव में ग्राम देवता स्थापित किए गए, परंतु स्वतन्त्रता के पश्चात हमारे देश के नीति निर्धारकों ने परिश्चम के साथ कदम से कदम मिलाने के लिए उनकी प्रत्येक नीति को लागू किया भले ही वो भारतीय समाज, भारतीय पर्यावरण के साथ उचित तालमेल न रखती हो। जबकि हमारे देश की परिस्थितिया पश्चिमी देशों से एक दम भिन्न हो पश्चिम की नकल करते समय हमें इस बात का ख्याल रखना चाहिये की

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय,
झाँसी –284003

हमारे देश के पास विश्व की कुल भूमि का 2.4 प्रतिशत है जबकि जनसंख्या 17 प्रतिशत है। यही कारण है कि जिस नदी को हम माता मानकर पूजते थे वही नदी आज सबसे ज्यादा दूषित है, जिन वृक्षों की हम पूजा करते थे उसी वृक्ष को आज संरक्षित करने की आवश्यकता पड़ रही है, जो पर्वत देव स्थल माने गए थे उनका ही खनन आज अपने चरम पर है।

राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी ने 1936 में ग्राम पुर्ननिर्माण की संकल्पना की थी जिसमें गाँवों के आर्थिक व सामाजिक समुत्कर्ष को प्रेरित करने का संकल्प लिया था। उनका मानना था कि प्रत्येक गाँव का विकास इस प्रकार हो कि प्रत्येक गाँव स्वंय में पूर्ण व आत्मनिर्भर इकाई बन सके जो हर एक ग्रामवासियों की मूलभूत आवश्यकता जैसे भोजन, कपड़ा व अन्य सुविधाओं को पूर्ण कर सके। इसी दृष्टि को ध्यान में रखते हुए उन्होंने ग्रामीण युवाओं को रोजगार के संसाधन उपलब्ध कराने व ग्रामीण संसाधनों को उपयोग में लाने के लिए खादी व ग्रामोद्योग को बढ़ावा देने पर जोर दिया। आज के परिप्रेक्ष्य में, महात्मा गाँधी के इस दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए पुनः एक बार नए रोजगारों के सृजन की आवश्यकता है जो ग्रामीण क्षेत्रों का उत्थान व युवाओं का गाँव से पलायन रोक सके साथ ही ग्रामीण जीवन स्तर को सुधार कर ग्रामीण अर्थव्यवस्था को नवीन ऊँचाई दिला सके।

आज स्वतंत्रता के 72 वर्ष बीत जाने के बाद भी गाँव, ग्रामीण एवं कृषि की दशा में कोई बहुत सुधार नहीं हुआ हैं आजादी के बाद जल, जंगल एवं जमीन की हालत अत्यन्त नाजुक है। जलाशयों का क्षेत्र सिमटकर 5 से 0.7 प्रतिशत रह गया है सिंचाई की समस्या, कृषि उत्पादों को बाजार न मिलने की समस्या, फसलों की बर्बादी से किसानों की आय दिनों–दिन सिकुड़ती जा रही है। इसी क्रम में वैज्ञानिकों ने उपरोक्त आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए बुन्देलखण्ड में एक ऐसे केन्द्र की स्थापना का स्वप्न देखा जिसमें जैव–विज्ञान तकनीकों का प्रयोग ग्रामीणों के जीवन स्तर को ऊपर उठाने तथा ग्रामीण अर्थव्यवस्था को द्रतुगामी बनाने के लिए गाँवों के युवाओं को प्रशिक्षित किया जा सके। ग्रामोत्थान के इस कार्यक्रम का नाम जैविक–ग्राम अथवा जैविक घाटी विकास केन्द्र दिया जा सकता है।

जैविक–ग्राम का अर्थ है "जीव विज्ञान में हुए नवीन शोधों को जैव व पारंपरिक तकनीकों के समावेश से पारिस्थितकी व आर्थिक समुन्नत विकास से ग्रामीण मानवीय जीवन की आजीविका को सुरक्षित करना"। जैविक ग्राम कार्यक्रम का मुख्य उददेश्य है ग्रामीण पर्यावरण भंडार को सरंक्षित व संवर्धित करते हुए प्राकृतिक संसाधनों का भरपूर व सतत् उपयोग कर निंरतर व नियमित कृषि उत्पादकता को बनाए रखना। इस कार्यक्रम में मुख्य अंग भूमि की उर्वरता को बढ़ाते हुए फसल, बागवनी, सब्जी, पशुधन, मछली व ग्रामवासी है। कार्यक्रम में ग्रामीण युवाओं व महिलाओं को मछली पालन, खाने योग्य मशरूम का उत्पादन बागवानी, मधुमक्खी पालन, किण्वन, जैव अवशिष्ट से फसलो के अवशेष एवं पशुओं का मलमूत्र, बकरी पालन, जैव–नियंत्रण, जैविक ऊर्जा, मुर्गी पालन तथा बत्तख पालन इत्यादि के बारे में सिखाया व प्रोत्साहित किया जाएगा जिससे ग्रामीण स्वयं सशक्त व देश के तीव्र आर्थिक वृद्धि के केन्द्र बन सकें।

ग्रामीण युवाओं में रोजगार सृजित करने व उच्च शिक्षा को और अधिक सबल बनाने के लिए निम्नलिखित कार्यक्रम व नीतियॉ अपनाई जा सकती है।

1. आदर्श जैविक ग्राम का एकीकृत कृषि तंत्र के आधार पर विकास व निर्माण।
2. ग्रामीण पुनर्वास के लिए सक्षम संसाधनों का पुनरूत्पादन व पर्यावरण सरंक्षण के लिए सतत् तंत्र का विकास।
3. स्नातक व स्नातकोत्तर विद्यार्थियों के डिग्री की गुणवत्ता बढ़ाने व मानव संसाधन के विकास के लिए।
4. शोध, उत्पादन व जैव तकनीकों को ग्रामीण स्तर पर क्रियान्वयन हेतु उच्च गुणवत्ता वाली शोध प्रयोगशाला की स्थापना।
5. प्रमाण–पत्र पाठ्यक्रम के अंतर्गत विभिन्न ग्राम आधारित तकनीकों में ग्रामीण युवाओं को प्रशिक्षण।
6. फसलों, फलों व सब्जियों व अन्य अनाज के अर्थपूर्ण व सतत क्रम में जैविक विधि से अधिकतम। उत्पादकता के लिए किसानों को प्रशिक्षण।
7. मछली पालन, मौन पालन व पशुपालन सम्बंधित विषयों पर किसानों को प्रशिक्षण।
8. शोध वैज्ञानिकों व मुख्य प्रशिक्षकों का निर्माण करना जो जैविक ग्राम के विकास व प्रबंधन में आधुनिक तकनीकों के प्रयोग के बारे में जानकारी कौशल प्रशिक्षण संस्था के माध्यम से दे सके, जिससे ग्रामीण युवाओं की सोच, ज्ञान व कौशल में वृद्धि की जा सकें।

जैविक ग्राम विकास केन्द्र में विभिन्न प्रकार के स्नातक व स्नात्तकोत्तर स्तर पर डिप्लोमा व डिग्री के कार्यक्रम चलाये जाएगे जो ग्रामीण संसाधन व आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए निर्धारित किये गये है। इस प्रकार के डिप्लोमा व डिग्री जहाँ एक तरफ ग्रामीण युवाओं में रोजगार के साधन सृजित करने में सहायक होंगे वही दूसरी ओर गाँवों में ऐसे मानव संसाधन की श्रृंखला निर्माण होगी जो ग्रामीण उत्थान में वैज्ञानिक समावेषी विचार वाली होगी जिससे गाँवों के संसाधन का सही व सुनिश्चित उपयोग हो सकेगा साथ ही राष्ट्र के कुल सकल उत्पाद में भी तेज गति से वृद्धि होगी।

जैविक ग्राम कार्यक्रम के अन्तर्गत के सुशासन, सूक्ष्म पूँजी व ग्रामीण बीमा, प्रतिपूर्ति प्रबंधन कौशल विकास व आजीविका

ग्रामीण स्वास्थ प्रबंधन तथा कृषि प्रसंस्करण व खाद्य उद्योग इत्यादि विषयों में प्रमाण पत्र एवं डिप्लोमा पाठयक्रम मुख्य रूप से चलाया जायेगा। इस कार्यक्रम के पीछे दृष्टि यह है कि जब ग्रामीण छात्र अथवा ग्रामवासी विभिन्न पाठ्यक्रम में रूचि अनुसार प्रशिक्षण लेकर अपने गाँव जाये तो गाँव के मध्य अथवा यथा संभव जगह पर प्रतीकात्मक ग्राम देवता की स्थापना कर उसे केन्द्र बिन्दु मानते हुए चारों ओर विभिन्न प्रकार के जैव विज्ञान की तकनीकों व शोध परक कृषि व औद्योगिक कृषि से सम्बंधित जैसे मधुमक्खी पालन, मत्स्य पालन, मुर्गी पालन, पशुपालन, औषधीय गुणों वाले पौधों की खेती, बागवानी वर्मी कम्पोस्ट खाद के निर्माण के लिए लघु उद्योग, बत्तख व सूअर पालन इत्यादि प्रकल्पों को स्थापित किया जाए। जिससे गाँव के कृषक व प्राकृतिक संसाधनों का अर्थपूर्ण व वैज्ञानिक रूप से सदुपयोग कर सके। इस प्रकार गाँव एक कृषि पर्यटकीय स्थल के साथ–साथ आजीविका का अच्छा विकल्प सिद्ध हो सकेगा।

इस योजना के अनुरूप गाँव को सामाजिक व आर्थिक रूप से समुन्नत किया जा सकता है। जिससे गाँव व गाँववासियों के स्वास्थ्य, पर्यावरण व बेरोजगारी की समस्या का समाधान किया जा सकता है व समाज का उत्थान कर राष्ट्र निर्माण में महती भूमिका निभाई जा सकती है।

समन्वित प्रयास जैसे एकीकृत रोग प्रबन्धन, एकीकृत पोषक प्रबन्धन एवं एकीकृत खेती प्रबन्धन से न केवल प्राकृतिक संसाधनों को और अधिक समृद्ध किया जा सकेगा अपितु मरनेगा की योजनाओं को भी समन्वित रूप से लागू करने की आवश्यकता है। मनरेगा में 260 कार्य किये जाते है इसमें 164 कृषि कार्य, 112 अन्य लाभार्थी परक योजनायें है। मरनेगा में 58 जल संसाधन कार्य, 50 वृक्षों के सम्बन्ध में और 32 भूमि सुधार के कार्य है। जब तक सभी गतिविधियों को एक साथ नहीं जोड़ेगे, तब तक अपेक्षित लाभ नहीं होगा। इससे कवर्जन के माध्यम से हम किसानों की आय को दोगुना कर सकते है।

जब गाँव में वैज्ञानिक तरीके से डेयरी की स्थापना होगीा तो किसानों को कम लागत में अच्छी जैविक खाद भी उपलब्ध होगी जिससे उन्हे कम खर्च में अच्छा व गुणवत्ता वाले अनाज व सब्जियों के जैविक उत्पादन का अवसर मिला सकेगा। साथ ही साथ इस कार्यक्रम से गाँव के मजदूर वर्ग को वर्ष भर काम मिल सकेगा, जिससे उन्हे काम की तलाश में शहरों की ओर पलायन नहीं करना पड़ेगा एवं वो भी अच्छा जीवन यापन कर सकेगें, जिस गाँव में ये कार्यक्रम संचलित होगा उस गाँव के वासियों के जीवन एवं आर्थिक स्थिति में सुधार होगा।

ग्रामीण जीवन में बहुत सा समय खाली होता है इनका सदुपयोग किया जाना चाहिए। क्योंकि खेती के काम से बचा हुआ बहुत सा समय ऐसा होता है। जिन्हे ग्राम वासी विभिन्न प्रकार के ऐसे कार्यों में लगा देते है। जिसका उनके जीवन के विकास में कोई महत्व नहीं होता उन्हें इस बात से अवगत कराना होगा कि वे खाली समय का सदुपयोग अपनी प्रतिभा व कौशल के विकास में कर सकते है। साथ की अपनी उद्यमिता को विकसित करके गाँव के संसाधनों का उपयोग कर उन कुटीर उद्योग व गृह उद्योगों को अपना सकते है, जो उनके गाँव की परिस्थितियों के अनुकूल है। इनमें महिलाओं की भागीदारी होना अनिवार्य है। ग्रामीणजनों को इस बात का बोध कराए जाने की महती आवश्यकता है कि महिलाएँ कोई चूल्हा चौका करने अथवा घर की शोभा बढ़ाने की वस्तु नहीं है, उनका एक समर्थ व्यक्तित्व है, जिसे विकसित होने के भरपूर अवसर मिलने चाहिए। ग्रामीण महिलाओं द्वारा जो भी रोजगार थे आज वह सभी बहुराष्ट्रीय कम्पनियों ने हथिया लिए है। नारी सशक्तिकरण गाँवों से ही प्रारम्भ हो, इससे अच्छा क्या हो सकता है कि महिलाओं के विभिन्न प्रकार के कौशल विकास से ही राष्ट्र का सर्वागीण विकास संभव है।

भारत के स्वंतत्र होने पर गाँवों को विभिन्न प्रकार से महत्व देने पर चर्चाए तो होती रहीं, किन्तु उस दिशा में आवश्यकता के अनुकूल कार्य नहीं किए जा सकें। जीवन की आधारभूत सुविधाएँ 70 प्रतिशत ग्रामवासियों तक पहुँचाने से अधिक जोर, 30 प्रतिशत नगरवासियों को उपलब्ध कराने पर ही दिया जाता रहा। अनेक प्रकार की योजनाऐं बनीं व चली भी, परन्तु उन पर समुचित ध्यान न दिये जाने के कारण अनके वांछित लाभोन्मुखी परिणाम सामने न आ सके। इसी को ध्यान में रखकर एकीकृत मॉडल को प्रस्तावित किया गया जिसमें ग्रामोन्मुखी विकास को ध्यान में रखते हुए विभिन्न प्रकार के अन्तविषयक पाठ्यक्रमों का निर्माण किया जाये जिससे ग्रामवासियों को नगर कि ओर पलायन को विवश नहीं होना पड़ेगा, वे गाँव में ही कुटीर एवं कृषि उद्योग व विभिन्न प्रकार के लघु उद्योग स्थापित कर युवाओं के लिए रोजगार सृजन कर सकेंगें।

किसी ने सत्य ही कहा है कि देश के ग्रामीण उत्थान में मात्र शोध प्त्रों से काम नहीं चलेगा क्योकि अधिकतर शोध पत्र व्यावहारिक ही नहीं होते, जो व्यावहारिक होते है वे कभी जमीन पर नहीं उतर पातें इसका कारण है शोध की अव्यावहारिकता व दिशाहीनता। यदि हम चाहते है कि गाँवों का विकास तकनीको व विज्ञान से हो तो वे तकनीक व विज्ञान ग्राम आधारित होना चाहिये न कि शोध पत्र आधारित। जैविक ग्राम का कार्यक्रम तब और भी महत्वपूर्ण हो जाता है, जब भारत के ग्रामीण जन हमारे प्रधानमंत्री की ओर बड़ी आशा भरी निगाह से देखते है कि ये वो ही तो है जो शिक्षक के रूप में इस राष्ट्र की मूलभूत आवश्यकताओं को समझ सकते है व विज्ञान की नवीनतम तकनीक से राष्ट्र की पंरपरा को अक्षुण्ण रखते हुए गाँवों का न केवल विकास अपितु राष्ट्र को संबल व विकसित बना सकते है।

आखिर कैसे होगी किसानों की आय दोगुनी?

डॉ. वी.के. सचान

सारांश : यदि किसानों की आय को दोगुना करना है तो प्राकृतिक संसाधनों के बिगड़ते स्वरूप को सही करना होगा और नष्ट होती जा रही जैव विविधता को बचाना होगा, जब हम सब मिलकर प्रकृति के स्वरूप को ठीक कर लेंगे तो किसानों की आय स्वयं दोगुना हो जायेगी, किन्तु यदि हम प्राकृतिक संसाधनों का दोहन करते रहे और जैव विविधता को नष्ट करते रहे तो किसानों की आय घटने की सम्भावनाये तो है, परन्तु आय बढ़ने की नहीं है।

भूमि में जीवांश कार्बन एक प्रतिशत होना चाहिए जो आज घटकर 0.30 प्रतिशत बचा है, किसी भी गाँव में सतही जल यानि जलाशयों का क्षेत्रफल पाँच प्रतिशत होना चाहिए जो आज घटकर 0.9 प्रतिशत बचे है, भूमि में औसत भूगर्भ जल स्तर 30 से 50 फीट पर होना चाहिए जो आज खिसककर 120 से 250 फीट पर पहुँच गया है। किसी भी गाँव के कुल क्षेत्रफल का 20 प्रतिशत भू–भाग पेड़ों से ढका होना चाहिए जो आज मुश्किल से 2 से 3 प्रतिशत ढका हुआ दिखाई देता है। भूमि में पाए जाने वाले लाखों प्रकार के लाभ दायक सूक्ष्म जीवों जो मनुष्य एवं पशुओं के मल–मूत्र को 24 घंटे में खाकर ह्यूमस बना दिया करते थे, उन को हम फसल सुरक्षा रसायन डालकर नष्ट कर चुके है। एक हेक्टर भूमि में करोड़ों केंचुए हुआ करते थे जो फसलों के अवशेष को खाकर ह्यूमस बनाया करते थे उन्हें इन रोटावेटर चलाकर एवं भूमि शोधन रसायन डालकर नष्ट कर चुके रहे है। पेड़ों पर चिड़ियाँ नहीं है, गाँव के जलाशयों में जलचर नहीं है, भूमि के मित्र जीव नष्ट हो चुके है। और हम किसानों की आय को बढ़ाने, जैविक खेती करने, गाँवों में रोजगार के अवसर बढ़ाने की बात कर रहे हैं।

इस बात में कोई संदेह नहीं है कि आज देश का अन्नदाता किसान नीति निर्माताओं एवं सरकारी मशीनरी के सामने हाथ फैलाये खड़ा है। उत्तम कही जाने वाली खेती आज सबसे निचले पायदान पर आकर खड़ी हो गयी है। किसान के बच्चे आज खेती छोडकर शहरों की ओर पलायन कर रहे है। यह कुछ विचारणीय सवाल है जिन्हें नीति निर्माताओं को, किसान कल्याण से जुड़ी प्रत्येक सरकारी मशीनरी को एवं स्वयं किसानों को समझने पड़ेंगे। जब तक मनुष्य इस धरती पर है उसे भूख लगेगी और भूख को शांत करने के लिए भोजन की जरूरत पड़ेगी। और यदि मनुष्य को भोजन नहीं मिलेगा तो वह जिन्दा नहीं रह पायेगा। इस हकीकत को मनुष्य भली भांति समझता है आखिर फिर इस विषय पर उसकी उदासीनता क्यों है।

भारत सरकार ने संकल्प लिया है, कि वह 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करेगी। किन्तु किसानों की आय कैसे दोगुनी होगी, गाँवों से युवा बेरोजगारों का पलायन कैसे रुकेगा, गाँव एवं शहरों में रहने वाले लोगों को जहर मुक्त भोजन और शुद्ध पीने का पानी कैसे नसीब होगा? इस विषय की जड़ तक पहुँचने का विचार किसी भी स्तर पर नहीं किया जा रहा है। बीज के नाम आनाज को अनुदान पर बाँट देने से, किसानों को उसकी भूमि का मृदा स्वास्थ्य कार्ड उपलब्ध करा देने से, किसानों का कर्ज माफ कर देने से,या फिर उन्हें प्रति वर्ष कुछ धनराशि की मदद कर देने से आय बढ़ने वाली नहीं है और न ही गाँवों से पलायन रुकने वाला है।

जब तक नीतियां अथवा कृषि क्षेत्र से जुड़े विभाग इस बात को स्वीकार नहीं कर लेते हैं कि कृषि का सम्पूर्ण नाता विज्ञान पर नहीं अपितु प्रकृति की संवृद्धि पर निर्भर है तब तक इस विषय पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। किसानों की आय को दोगुना करने और गाँवों सें पलायन रोककर गाँवों में ही रोजगार उपलब्ध कराने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं जैव विविधता का संवर्धन करना बहुत जरूरी है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं जैव विविधता के संवर्धन के बिना यदि कोई भी व्यक्ति किसानों की आय को दोगुना करने और गाँवों से पलायन रोकने का सपना देख रहा है तो स्पस्ट कर दूं कि उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है

कृषि अर्थ शास्त्र का विषय नहीं अपितु कृषि दर्शन शास्त्र का विषय है। यदि पढ़ा–लिखा समुदाय इस बात को स्वीकार कर लेगा तो कृषि की पैदावार बढ़ाना आसान हो जायेगा। शुद्ध भोजन और पीने के पानी की समस्या भी खत्म हो जाएगी और गाँव में रहने वाले लोगों को रोजगार के अवसर भी सुलभ हो जायेंगे। किन्तु जब तक कृषि को विज्ञान और अर्थशास्त्र से जोड़कर देखा जाता रहेगा तब तक किसानों की आय को बढ़ाना अथवा कृषि की पैदावार को बढ़ाना या फिर गाँवों में रोजगार के सृजन का काम सम्भव नहीं है।

गोविन्द बल्लभ पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय,
पन्तनगर–263145 (उधम सिंह नगर) उत्तराखण्ड

जिस खेत में हम किसी भी फसल का बीज बोते हैं यदि उसकी उर्वरता स्तर यानि की भूमि के जैवीय गुण ठीक है तो फिर उस फसल को न तो किसी भी प्रकार के रसायनिक उर्वरकों की जरूरत है और न ही उस फसल को कोई रोग लगने वाला है। यदि उस खेत के आस–पास की जैव विविधता मजबूत है तो फिर उस फसल में कीट भी कोई क्षति नहीं पहुँचा सकते हैं। दरअसल प्रकृति के पास यह व्यवस्था स्वयं है की वह अपनी देख–रेख स्वयं कर लेती है बस मनुष्य को उस व्यवस्था को समझना है और प्रकृति की उस व्यवस्था के साथ परस्परता में मिलकर जीना है।

आज के पचास वर्ष पूर्व हमारे भोजन में ज्वार और बाजरे की रोटी हुआ करती थी। ज्वार और बाजरे की फसल खरीफ में पैदा होती थी जिनको पानी देने की जरूरत नहीं पड़ती थी। आज हमने ज्वार–बाजरे की जगह गेंहू खाना प्रारम्भ कर दिया है जिसकी खेती रबी में की जाती है और उसको पाँच पानी लगाये जाते है वह भी भूमिगत जल से। पहले किसान मिश्रित फसलें बोता था और वह मिश्रित फसलें एक दूसरे को सपोर्ट करती थी किन्तु आज हम मोनोकल्चर पर आ गये हैं।

किसानों की आय को दोगुना करने के लिए किसानों को फसल उत्पादन प्रणाली से बाहर निकल कर खेती करनी होगी। फसल उत्पादन का कार्य और खेती का कार्य अलग–अलग विषय है। जब तक किसान खेती करता था तब तक वह घाटे में नहीं था किन्तु जबसे खेती छोडकर फसलों के उत्पादन का काम करने लगा है तब से किसान लगातार घाटे में जा रहा है। खेती का मतलब ही था जल, जंगल, जमीन और जानवर। आज किसान को जमीन से, जानवर से, जंगल से अथवा जल से कोई सरोकार नहीं है। आज जल संचय से अधिक ध्यान जल निकासी पर दिया जा रहा है। खेत की उर्वरता बढ़ाने की बात बहुत कम होती है जबकि फसलों की उपज बढ़ाने पर ध्यान अधिक दिया जा रहा है। खेतों की मेड़ों पर वृक्ष लगाए नहीं जा रहे हैं बल्कि यह कहकर काटे जा रहे है कि इनके नीचे फसल नहीं पैदा होती है। पशु पालन से अधिक ख्याल कृषि मशीनरी पर दिया जा रहा है।

जमीन, जल, जंगल और जानवर मानव जीवन के आधार हैं। जमीन मतलब भूमि की उर्वरता को बढ़ाने का कार्य करके, जल मतलब वर्षा के पानी का जलाशयों में संरक्षण करके, जंगल मतलब खेतों की मेड़ों पर पेड़ लगाकर, और जानवर यानि घर में पशु पालन का काम करके ही हम किसानों की आय को दोगुना करने और गाँव से पलायन रोकने में समर्थ हो पाएंगे।

वास्तव में कृषि मानव सभ्यता की रीढ़ है जिसे हम कृषि संस्कृति के नाम से जानते है। यहाँ हम भूमि, गाय एवं नदियों को माँ कहते हैं। गाँव के जलाशयों में विष्णु भगवान का तो पेड़ों में ब्रह्मा जी का दर्शन करते हैं। हकीकत तो यह है कि कृषि सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः पर यकीन करने वाला विषय है जो हमेशा इंसान को यही सिखाता रहा है कि दाने–दाने पर लिखा है खाने वाले का नाम। कृषि मानव जीवन दर्शन है जो प्रकृति के साथ मिलकर जीने की प्रेरणा देता है। पिछले 40 वर्षों से मैकेनाइज एवं रसायन आधारित कृषि के चक्कर में हमने खोया बहुत कुछ है और पाया बहुत कम है। जो पाया है सब खा डाला है, किन्तु जो खोया है उसका खामियाजा मेरी आने वाली संतानों को भुगतना पड़ेगा।

आइये जानते है :– कि हमने खोया क्या है ?

रसायनिक उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा रसायनों के बढ़ते प्रयोग से फसलों की उत्पादन लागत बढ़ती जा रही है जिसे घटाने के लिए ईमानदारी से प्रयास करने की जरूरत है। इन रसायनों को बंद करके भी हम उतना या उससे अधिक उत्पादन प्राप्त कर सकते हैं जितना आज प्राप्त कर रहे है।

प्रति इकाई क्षेत्रफल से उत्पादकता घटने लगी है अथवा रुक गयी है। यह बात हम सब स्वीकार कर चुके है। किसानों को फसलों की उपज का मूल्य लागत के अनुसार नहीं मिल रहा है यह बात भी हम सब स्वीकार करते है। उत्पादकता इस लिए नहीं बढ़ पा रही है क्योंकि भूमि की उर्वरता घटती जा रही है, और किसान को उसकी उपज का सही मूल्य इस लिए नहीं मिल पा रहा है क्योंकि आज जरूरत से अधिक उत्पादन हो रहा है।

आज का समय कृषि की पैदावार बढ़ाने का नहीं है और न ही किसानों की आय को दोगुना करने का है। आज समय इस बात का है कि क्या हम आने वाली पीढ़ियों के लोगों को भोजन, पानी एवं हवा जैसे उपहार देकर जा पाएंगे अथवा नहीं। यदि आज हम सबने मिलकर प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं जैव विविधिता के संवर्धन पर ध्यान नहीं दिया तो निश्चित है कि हमारे बच्चों का भविष्य खतरे में पड़ जायेगा।

मित्रो आज त्वरित लाभ कमाने की बजाय इस बात पर ध्यान देना है कि हमारी भूमि की उर्वरता कैसे बढ़े, गाँव में सतही जल के भंडार कैसे बढ़ें, खेतों की मेड़ों पर अधिक से अधिक पेड़ कैसे लगें और भूमि का मित्र केंचुआ कैसे बचें, पर–परागित फसलों में परागण की क्रिया को सम्पन्न करने वाली तितलियाँ एवं मधु–मक्खियाँ कैसे बचे, भूमि में पाए जाने वाले लाभ–दायक सूक्ष्म जीव कैसे सुरक्षित रहें। ध्यान रखना कि यदि यह प्रकृति जिन्दा है तो हम जिन्दा है, यह प्रकृति धनवान है तो में धनवान हूँ, यह प्रकृति खुशहाल है तो में खुशहाल हूँ। यदि यह प्रकृति बर्वाद हो गयी तो हम बर्वाद हो जायेंगे। प्रकृति मेरी माँ है इसकी खुशियों में ही हमारी खुशियाँ है।

आइये मिलकर हाथ बढ़ाएं – पर्यावरण को संवृद्ध बनाएं।

आइये चले परम्परागत कृषि की ओर – जहाँ मुश्किलें कम और खुशियाँ अपार।

किसानों की आय को दोगुना करने का एक ही विकल्प है और वह है – जैविक खेती परन्तु जैविक खेती क्या है इसे समझना बहुत जरूरी है, आइये जानते है क्या है जैविक खेती, और जैविक खेती की जरूरत क्यों है और जैविक खेती कैसे की जानी है।

जैसा कि मैंने ऊपर लिखा है कि कृषि अर्थशास्त्र का विषय नहीं है अपितु कृषि शुद्ध रूप से दर्शन शास्त्र का विषय है। कृषि ही एक ऐसा विषय है जिसके आगे संस्कृति शब्द आता है। संस्कृति का मतलब संस्कार है और संस्कार का मतलब प्रकृति की व्यवस्था में पायी जाने वाली प्रत्येक जड़ एवं चेतन जगत की इकाइयों के साथ परस्परता में मिलकर जीने से है। हमारी संस्कृति कहती आई है की दाने–दाने में लिखा है खाने वाले का नाम।

जैविक कृषि क्या है? जीव जगत की नाना प्रकार कि इकाइयों से और पदार्थ जगत से हमारे जीवन का क्या रिश्ता है इस बात को समझ कर जब मनुष्य अपने जीवन की जरूरतों को पूर्ण करता है और इस बात का ध्यान रखता है कि खेती करते समय प्रकृति की व्यवस्था में किसी भी प्रकार की क्षति न होने पाए। यानि कि भूमि पर फसलों के उगाने की वह तकनीकी जिससे हमारी समस्त जरूरतें पूर्ण हो जाय परन्तु प्रकृति की किसी भी इकाई पर कोई प्रतिकूल प्रभाव न पड़े उसे जैविक कृषि कहते है। जीव जगत की प्रत्येक इकाई के साथ परस्परता में जीने की कला ही जीवन दर्शन अथवा कृषि दर्शन है।

जैविक कृषि क्यों की जाय? करोड़ों वर्षो से जब से मनुष्य इस पृथ्वी पर आया है उसके खाने पीने और स्वांश लेने की समस्त जरूरतें प्रकृति से ही पूर्ण होती रही है। परन्तु वर्तमान समय में हमारे भोजन पानी और हवा में बहुत प्रकार की विसंगतियाँ उत्पन्न हो गयी है जिसके कारण हमारे शरीर का स्वास्थ बिगड़ रहा है एवं प्राकृतिक संसाधनों का स्वरूप भी खराब हो रहा है और जैव विविधता भी नष्ट होती जा रही है। जब आगे आने वाली पीढ़ियों के भविष्य के बारे में विचार किया जाता है तो स्पष्ट दिखाई देता है कि यदि ऐसा ही चलता रहा तो आने वाली पीढ़ियों के लोगों को यह भी नसीब नहीं होगा जो आज हमे नसीब हो रहा है। अतः आने वाली पीढ़ियों की खुशियों के लिए जैविक खेती की जानी है। ताकि प्रकृति ने जो व्यवस्था दी है वह व्यवस्था अनादिकाल तक चलती रहे।

जैविक कृषि कैसे करें? भूमि की उर्वरता को देखो, खेतों के आस–पास उपलब्ध सतही जल के भंडार को देखो, क्षेत्र में पायी जाने वाली वनस्पतियों को देखो फिर थलचर, नभचर, जलचर को देखो और उसके अनुरूप सोंचो कि मुझे अपने खेत में क्या बोना है जिससे भूमि की उर्वरता घटने न पाय बल्कि बढ़े, सतही जल, अथवा भूमिगत जल कम न होने पाए बल्कि जलाशय बढ़े, क्षेत्र में पायी जाने वाली वनस्पतियाँ कम न होने पाए बल्कि बढ़े, और किसी भी जीव को कोई क्षति न हो। ऐसे सोचकर हमें अपनी फसलों के उत्पादन का काम करना चाहिए।

भूमि की उर्वरता क्या है? भूमि में जीवांश कार्बन की मात्रा एक प्रतिशत होनी चाहिए। 1950 के दशक में हमारे देश की भूमियों में औसत जीवांश कार्बन 0.52 प्रतिशत था किन्तु आज जीवांश कार्बन घटकर 0.30 प्रतिशत बचा है। भूमि में नाना प्रकार के लाभ दायक सूक्ष्म जीवों की उपस्थिति होनी चाहिए जिससे वह जैव पदार्थों को खाकर भूमि में जीवांश कार्बन की मात्रा को बढ़ाते रहे। परन्तु फसल सुरक्षा के नाम पर भूमि के गर्भ में प्रयोग किये गये हानिकारक रसायनों के कारण भूमि में पाए जाने वाले सूक्ष्म जीव नष्ट हो चुके है इसी लिए फसलों के अवशेष समय से सड़ते नहीं है। भूमि शिव का स्वरूप है शिव जी ने सम्पूर्ण दुनिया का विष पिया था, पी रहे है और यदि हम पिलायेंगे तो पीते रहेंगे। शिव जी जितना ही विष पियेंगे वह उतने ही सम्पन्न होंगे और मनुष्य को अधिक से अधिक और स्वस्थ्य खाद्य सामग्री उपलब्ध करायेंगे किन्तु मनुष्य ने जैव अवशिष्ट का सम्पूर्ण कचरा जिसे सड़ा–गलाकर भूमि में देना चाहिए था आज उसे आग लगाकर जलाने का काम करने लगा है अथवा जलाशयों में फेंक रहा है।

सतही जल के भण्डारों का कृषि में क्या महत्व है? प्रत्येक प्रकार की वनस्पति को पानी की जरूरत पड़ती है और यह पानी उसे भूमि में पायी जाने वाली नमी से मिलता है। जिन भूमियों में जीवांश कार्बन की मात्रा अधिक होती है उन भूमियों की जल धारण क्षमता अधिक होती है और जिन क्षेत्रों में सतही जल के भंडार पाए जाते है वहाँ की भूमियों में नमी उन्हीं भण्डारों से पहुँचती रहती है। देश की आजादी के समय देश के गाँवों में जलाशयों का क्षेत्रफल 2.90 प्रतिशत हुआ करता था जो आज घटकर मारे 0.90 प्रतिशत बचा है जबकि सतही जल के भंडारों का क्षेत्रफल पाँच प्रतिशत होना चाहिए, जलाशयों में विष्णु का वास है। कहते भी है कि विष्णु भगवान क्षीर सागर में रहते है। क्षीर सागर का मतलब है बड़े–बड़े जलाशयों में भरा हुआ सुंदर निर्मल शीतल जल।

जैविक कृषि में पेड़ों की क्या जरूरत है? पेड़ अपने आप में एक प्रकार की कृषि है, जो मनुष्य को नाना प्रकार के उपहार देते रहते है। आज से 50 वर्ष पूर्व जब बैलों से खेती होती थी और लोगों के पास कच्चे मकान हुआ करते थे तब खाना बनाने के लिए जलाऊ लकड़ी, बैल गाड़ी बनाने के लिए लकड़ी, घरों की छत को पाटने के लिए लकड़ी एवं चारपाई बनाने के लिए लकड़ी किसान को खरीदने की जरूरत नहीं पड़ती थी। यही नहीं गाँव के लोगों को अपने ही गाँव में नाना प्रकार के फल मिल जाया करते थे जिससे खाद्य सुरक्षा सुनिश्चित

होती थी। पेड़ वर्षा को आकर्षित करते थे और पर्याप्त वर्ष हुआ करती थी। पेड़ों पर नाना प्रकार के पक्षियों का ठिकाना होता था।

रहिमन बिरवा खेत में सींचे ते कुम्हलाये।
रहे भरोसे राम के पत्थर पर हरियाये।।

भूख है मजहब इस दुनियां का और हकीकत कोई नहीं।

मिट्टी की महक, रोटी का स्वाद, हवा की सुगंध, और मनुष्य का मनुष्य के साथ आपसी सौहार्द बना रहे। लोग एक दूसरे के सुख– दुःख में साथ बने रहे तब कोई भी विकास मनुष्य के लिए महत्वपूर्ण है और यदि भूमि बंजर हो जाय, पानी समाप्त हो जाये, आदमी को आदमी से नफरत हो जाये तो फिर विकास का कोई मतलब नहीं है। आज के 40 वर्ष पूर्व भौतिक संसाधनों का एवं कागज के नोट का आभाव था परन्तु लोग शरीर से और मन से खुशहाल थे। परन्तु आज भौतिक संसाधनों का जखीरा और कागज के नोट भी मनुष्य के चेहरे में मुस्कान नहीं ला पा रहे है। जब में इस दुनियां में न हंस पा रहा हूँ न रो पा रहा हूँ तो फिर में यहाँ क्या कर रहा हूँ।

मित्रों किसान को उत्पादन बढ़ाने के लिए कहा जाता रहा और उत्पादन बढ़ाने के लिए उसे रसायनिक उर्वरकों एवं फसल सुरक्षा रसायनों के प्रयोग की सलाह दी जाती है माना कि एक जमाने में इसकी थोड़ी सी आवश्यकता थी परन्तु जब हम 1990 के दशक में खाद्यान उत्पादन में आत्मनिर्भर हो चुके थे तब हमें रुकना चाहिए था और विचार करना चाहिए था इनके प्रयोग से क्या–क्या नष्ट हो रहा है। परन्तु जिन्हें ऐसा सोचना चाहिए था वह क्यों सोचते, उन्हें तो किसान की गाढ़ी कमाई का पैसा किसान की जेब से निकाल कर अपने पास एकत्र करना था। किसान ने जो कमाया सब खेती में ही लगा दिया और हुआ क्या? जमीन बंजर हुई किसान की, लागत बढ़ी किसान की, पानी गया गाँव का, भूमिगत जल स्तर घटा आपकी जमीन का और मौज की किसी और ने।

फसलों की उत्पादन लागत घटाने एवं फसलों की उत्पादकता बढ़ाने के साथ–साथ भूमि की उर्वरता को बढ़ाने के लिए कुछ प्राकृतिक उपाय जिन्हें यदि किसान अपना लेगा तो निश्चित है कि उसकी आय दोगुनी हो जाएगी :–

1– मरे हुए पशुओं को किसान भाई इधर–उधर फेंक देते है यदि ऐसे मरे हुए पशुओं को अपने खेत में लेजाकर एक कच्चा गड्ढा खोदकर उसमे मरे हुए पशु को डालकर मिट्टी से ढक दिया जाए और उसे 6 माह बाद खोदकर उसकी मिट्टी अथवा खाद को खेतों में मिलाया जाए तो खेत की उर्वरता में सुधर आता है।

2– खेतों में फसलों की बुवाई के बाद करें प्रति दिन सुबह सूर्योदय के समय एवं शाम को सूर्यास्त के समय अग्निहोत्र (अगियारी) की जाए तो भी भूमि की उर्वरता को एवं फसलों की पैदावार को बढ़ाया जा सकता है।

3– फसलों के अवशेष एवं पशुओं के मलमूत्र को सदैव एकत्र करते रहें ऐसे पदार्थों को बेकार समझ कर फेंकना अथवा जलाना बंद कर दिया जाय और सामग्री की मात्रा के अनुरूप किसी छायादार स्थान पर एक कच्चा गड्ढा खोदकर उसमे सड़ा दिया जाए अथवा इस सामग्री को हीप कम्पोस्ट विधि से सड़ा लिया जाय और इस सड़ी हुयी खाद को खेत में बिखेर कर जुताई कर दी जाय तो भूमि की उर्वरता में सुधार होगा।

4– खेतों की मेड़ों पर अपनी आवश्यकता के अनुसार पेड़ लगायें। पेड़ों के लग जाने से ग्रीष्म ऋतु में खेत का तापमान नहीं बढ़ता है जिससे उसके नीचे लाभदायक सूक्ष्म जीव नहीं नष्ट होने पाते है और पेड़ पर पक्षियों का ठिकाना बनता है जो हमारी फसलों को कीटों से बचाने में सहायता करते है।

5– खेतों की मेड़ों को इतना मजबूत बना लें ताकि वर्षा जल की अधिकाँश मात्रा को खेत में रोका जा सके। इससे वायु मंडल में उपलब्ध नमी खेत में रुकेगी और नत्रजन की जरूरत कम होगी। साथ ही साथ रबी में फसलों की वुबाई के लिए पलेवा की जरूरत नहीं रहेगी।

6– खेत में बनाएं छोटा सा तालाब। यह तालाब इसलिए न बनाये कि इससे आप अपनी फसलों की सिंचाई करेंगे बल्कि इस लिए बनाये कि आपके खेत में वर्ष भर पानी बना रहे। यह पानी न जाने कितने जीव–जन्तुओं की प्यास बुझाएगा और नाना प्रकार के जीव–जन्तु आपके खेत के आप–पास रहकर आपके खेत की रखवाली करेंगे।

7– किसी भी फसल में जब पुष्प आने लगे तो शाम के समय रेडियो अथवा टेप रिकार्डर लेकर खेत पहुँच जाए और फसलों को आधा घंटे मधुर संगीत सुनाएँ। कहते है कि संगीत है शक्ति ईश्वर की हर स्वर में बसे भगवान रागी जो सुनाये राग मधुर रोगी को मिले आराम।

जब तक नीतियाँ अथवा कृषि क्षेत्र से जुड़े विभाग इस बात को स्वीकार नहीं कर लेते है कि कृषि का सम्पूर्ण नाता विज्ञान पर नहीं अपितु प्रकृति की संवृद्धि पर निर्भर है तब तक इस विषय पर आगे नहीं बढ़ा जा सकता है। किसानों की आय को दोगुना करने और गाँवों से पलायन रोककर गाँवों में ही रोजगार उपलब्ध कराने के लिए प्राकृतिक संसाधनों का संरक्षण एवं जैव विविधता का संवर्धन करना बहुत जरूरी है। प्राकृतिक संसाधनों के संरक्षण एवं जैव विविधता के संवर्धन के बिना यदि कोई भी व्यक्ति किसानों की आय को दोगुना करने और गाँवों से पलायन रोकने का सपना देख रहा है तो स्पष्ट कर दूँ कि उसकी मानसिक स्थिति ठीक नहीं है।

उपज का अच्छा मूल्य पाना है तो अपनानी होगी जैविक खेती

डॉ. डी.एस. श्रीवास्तव

सारांश : जैविक उत्पादों या ऑर्गेनिक प्रोडक्ट्स का बाजार मूल्य अधिक मिलने के कारण किसानों का जैविक खेती की ओर बड़ी संख्या में आकर्षित होना स्वाभाविक है। किसानों के बीच जैविक कृषि की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए, 45 फसलों, फसल पद्धतियों पर आधारित जैविक कृषि पद्धतियों का विकास किया गया है। इनका प्रचार–प्रसार राष्ट्रीय जैविक कृषि केन्द्र, परम्परागत कृषि विकास योजना तथा राष्ट्रीय बागवानी मिशन के माध्यम से किया जा रहा है।

प्रस्तावना

प्रतिस्पर्धा के इस युग में कृषि उत्पादों का अच्छा मूल्य ना मिलने के वैसे तो कई कारण हैं किंतु मुख्य बात यह है कि यदि आपका उत्पाद बाजार के अन्य उत्पादों की तुलना में गुणवत्ता (स्वाद, रंग, चमक, ताजगी, जहर मुक्त) में अन्य से बेहतर होगा तो दूसरे उत्पादों की तुलना में आप के उत्पाद का दाम ज्यादा मिलेगा एवं बाजार में प्राथमिकता से बिक भी जाएगा। कृषि लागत में वृद्धि का प्रमुख कारण है कि किसानों का बीज खाद दवा पर निर्भर हो जाना यदि बाजार में इनका मूल्य बढ़ता है तो निश्चित ही किसान की लागत बढ़ जाती है अतः किसानों को जैविक कृषि अपनाकर लागत में कमी के साथ–साथ मृदा स्वास्थ्य एवं पर्यावरण को सुरक्षित रख कर अधिक मूल्य प्राप्त किया जा सकता है आज ज्यादातर किसान बाजार की खाद् एवं रसायनों पर निर्भर रहकर उनका अंधाधुंध प्रयोग करते हैं जिसके कारण एक तरफ उनकी लागत तो बढ़ती है साथ ही साथ पर्यावरण का भी नुकसान होता है और यदि प्रयोग की वस्तु की गुणवत्ता ठीक नहीं हो तो फसल उत्पाद की गुणवत्ता भी खराब हो जाती है जिससे वाजिब मूल्य नहीं मिल पाता है

क्या है जैविक खेती?

प्रकृति ने हम सबको ऐसे ऐसे उपहार माध्यम संसाधन दिए हैं कि यदि हम उनका विवेकपूर्ण सदुपयोग कर लें तो हमें बाहर से किसी भी प्रकार के रसायन रासायनिक उर्वरक रासायनिक कीटनाशक का बिना प्रयोग किए कम श्रम कम लागत में गुणवत्ता युक्त उत्पाद प्राप्त किया जा सकता है इसके लिए किसी पर निर्भर रहने की आवश्यकता नहीं है

जैविक कृषि का उद्देश्य

- प्राकृतिक संसाधनों एवं फसल अवशेषों का सदुपयोग
- मृदा स्वास्थ्य संतुलन
- पर्यावरण संरक्षण
- मित्र शत्रु जीव अनुपात संतुलन
- गुणवत्ता युक्त एवं विषमुक्त उत्पाद
- जहर मुक्त खेती
- कृषि में टिकाऊपन

जैविक कृषि का महत्व

मृदा स्वास्थ्य में अनवरत सुधार जल की बचत कृषि एवं पशुपालन सामंजस्य से लाभ बौद्ध फसल अवशेषों का सदुपयोग पारिस्थितिकी तंत्र का विकास कम लागत अधिक लाभ विपणन समस्या से निजात पोषक तत्व प्रबंधन

- पौधे भूमि से पानी एवं पोषक तत्व वायु से कार्बन डाइऑक्साइड तथा सूर्य से प्रकाश ऊर्जा ग्रहण करते हैं
- प्राथमिक पोषक तत्व -- C, H,O
- मुख्य पोषक तत्व – N, P, K
- गौड़ पोषक तत्व - Ca, Mg, S
- सूक्ष्म पोषक तत्व -Fe, Zn, Cu, Mn, B, Mo, Cl, Ni

कैसे करें इनकी आपूर्ति?

- हरी खाद ढाँचा सनई का भरपूर प्रयोग करें
- गोबर की सड़ी खाद (छह माह गड्ढे में सड़ी) 100 कुंतल प्रति एकड़ प्रयोग करें
- केंचुआ खाद 25 कुंतल प्रति एकड़ प्रयोग करें
- नाडेप कम्पोस्ट (3 मीटर लंबा 1.8 मीटर चौड़ा 0.9 मीटर मोटा) से वर्ष में 6 टन प्रति पिट खाद प्राप्त की जा सकती है जिसका प्रयोग 2 हेक्टेयर क्षेत्रफल में किया जा सकता है

*वैज्ञानिक–फसल सुरक्षा, कृषि विज्ञान केन्द्र,
कटिया, सीतापुर, उत्तर प्रदेश*

- अनाज एवं सब्जी वर्गीय व तिलहन फसलों में नाइट्रोजन की आपूर्ति हेतु एजोटोबैक्टर 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ देसी खाद में मिलाकर प्रयोग करें
- दलहन वर्गीय फसलों में नाइट्रोजन की आपूर्ति हेतु राइजोबियम फसल विशेष 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- मोटे अनाजों में नाइट्रोजन की आपूर्ति हेतु एस्पाईरिलम 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- फास्फोरस की उपलब्धता बढ़ाने हेतु पी एस बी कल्चर 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- पोटाश की उपलब्धता बढ़ाने हेतु के एस बी कल्चर 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- जिंक की उपलब्धता बढ़ाने हेतु जिंक सोलुबिलाईजिंग बैक्टीरिया 100 मिलीलीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- जीवाणुओं की सक्रियता बढ़ाने हेतु जीवामृत 500 लीटर प्रति एकड़ प्रयोग करें
- फसल अवशेष का सदुपयोग करने हेतु वेस्ट डी कंपोजर का प्रयोग करें

खरपतवार प्रबंधन

खरपतवार फसल से पोषक तत्व, नमी, प्रकाश ,स्थान आदि के लिए प्रतिस्पर्धा करके फसल की वृद्धि, उपज एवं गुणों में कमी कर देते हैं. खरपतवारों की उपस्थिति जलवायु, मृदा की स्थिति, शष्य क्रियाये, प्रकाश, नमी, पिछली बोई गयी फसल, खेत में उपलब्ध रिक्त स्थान इत्यादि पर निर्भर करती है खरपतवारों को फूल निकलने की अवस्था से पहले ही समाप्त कर दिया जाना चाहिए अन्यथा यदि खरपतवार में 1 बार फूल बन गया तो वह अगले 7 वर्ष तक उस खेत में उगते रहेंगे रासायनिक विधियों से खरपतवार प्रबंधन करने में अधिक लगत के साथ यह भय भी बना रहता है की यदि संस्तुति खरपतवारनाशी के साथ–साथ सही मात्रा एवं सही प्रयोग विधि न अपनायी गयी तो सफल को काफी नुकसान उठाना पड़ता है

बिना रसायन कैसे करे खरपतवार प्रबंधन?

- ग्रीष्मकाल में मिट्टी पलटने वाले हल से गहरी जुताई करके खरपतवारों की जड़ो को खेत से बाहर करके जला दें।
- मृदा सौरीकरण अवश्य करे तथा फसल चक्र अपनाये। एक ही तरह की फसलों को बार–बार न लगाए।
- आम एवं जामुन की पत्तियों को बुवाई से 1 माह पूर्व खेत में बिछाकर पानी भर दे तथा सड़ने दे।
- फसल में जूट मल्चिंग का प्रयोग करे।
- किसी भी फसल को 15–45 दिन तक खरपतवारमुक्त रखने हेतु निकाई गुड़ाई करते रहे इससे जड़ो में वायु संचार भी बना रहता है। खेतों में उग रहे खरपतवारों को बीज बनने से पहले ही समाप्त कर दे।
- एकल फसल के स्थान पर सहफसली करे या खेत में उपस्थित रिक्त स्थानों पर पालक, चौलाई, मूली, गाजर, धनिया या मौसम आधारित फसलों का चुनाव कर लगाए।
- मूँग एवं लोबिया एक साथ लेने से खरपतवारों को प्रकाश की समस्या उत्पन्न हो जाती है फलस्वरूप धीरे–धीरे समाप्त होने लगते है।

कीट रोग प्रबंधन

प्रकृति में यदि दुश्मन कीट है तो इनसे निपटने के किये हमें तमाम ऐसी विधियाँ एवं मित्र जीव भी दिए है यदि हम इनकी पहचान कर सदुपयोग करे तो हमें किसी भी प्रकार का रसायन प्रयोग करने की आवश्यकता नहीं है।

कैसे करें बिना रसायन कीट रोग प्रबंधन

- खेत को साफ–सुथरा एवं खरपतवार मुक्त रखें।
- मृदा सौरीकरण एवं भूमि शोधन अवश्य करें।
- बीज उपचार ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम प्रति किलोग्राम बीज से करें।
- पौध उपचार स्यूडोमोनास 5 मिलीलीटर प्रति लीटर पानी में घोल कर 30 मिनट तक डूबा कर उपचारित करें।
- नर्सरी लो टनल पॉली हाउस में उगाएं।
- सब्जियों की रोपाई से 1 माह पूर्व खेत के किनारे चारों ओर चार घनी कतार ज्वार बाजरा या मक्का की लगाएं।
- मेड़ो के किनारे मौसमी फूलों के पौधे जैसे गेंदा सूरजमुखी गाजर राजमा सॉन्ग सरसों लोबिया अल्फाल्फा रोपित करें ताकि मित्र कीटों का आकर्षण किया जा सके।
- फसल के बीच–बीच में प्रतिकर्षण पौधे जैसे मेंथा तुलसी रोपित करें फंदा फसल जैसे रेडी या गेंदा बीच–बीच में रोपित करें।
- टी आकार का चिड़िया का अड्डा 12 से 15 प्रति एकड़ लगाएं ताकि पक्षी दुश्मन कीटों का विनाश कर सकें।
- पीला चिपचिपा पाश या पीली पन्नी में जला हुआ डीजल या ग्रीस लगाकर 20 से 25 प्रति एकड़ लगाएं।
- लाइट ट्रैप 1 प्रति एकड़ शाम 7:00 से 9:00 अवधि के बीच में लगाएं।

- खेतों के किनारे घास फूस को जलाकर धुँआ करते रहें।
- विभिन्न सुंडियों को नियंत्रित करने हेतु फेरोमोन ट्रैप लगाएं।
- घर पर वानस्पतिक कीटनाशी (नीम, करंज, शरीफा, धतूरा, मदार, बेशर्म, लहसुन, काली मिर्च, हींग) इत्यादि को पीसकर दोगुने गोमूत्र में मिलाकर 1 माह तक सड़ायें, तत्पश्चात इसे 100 से 200 मिलीलीटर प्रति टंकी 5 से 7 दिन पर छिड़काव करते रहें।
- रोगों से बचाव हेतु छांछ 2 लीटर प्रति टंकी प्रयोग करते रहें।
- कंडे की राख पौधों एवं पत्तियों पर बुरकाव करते रहें।
- रस चूसक कीटों एवं सुंडियों से बचाव हेतु नीम का तेल 5 मिलीलीटर प्रति लीटर डिटर्जेंट मिलाकर छिड़काव करें।
- रस चूसक कीट, दीमक एवं गिडार से बचाव हेतु बिवेरिया बेसियाना 5 मिलीलीटर प्रति लीटर छिड़काव या गोबर की खाद में मिलाकर भूमि में प्रयोग करें।
- ट्राइकोडर्मा स्यूडोमोनास बिवेरिया घर में तैयार करने हेतु आप केचुआ खाद का प्रयोग करे।
- चना अरहर टमाटर एवम मूँगफली की सुंडियों हेतु HaNPV का प्रयोग करें तथा इसको घर में भी तैयार किया जा सकता है।
- कद्दू वर्गीय सब्जियों एवं फलदार वृक्षों जैसे आम अमरूद पपीता में फल मक्खी नियंत्रण हेतु फल मक्खी पाश लगाएं।
- खेतों के पास विभिन्न प्रकार की उग रही खरपतवारों का अक्र बनाकर फसल में प्रयोग करते रहें
- चूहों के नियंत्रण हेतु उल्लू का आवास बना कर पेड़ों पर टांगे।

जैविक खेती का पंजीकरण

किसान भाइयों जैविक खेती प्रमाणीकरण हेतु आप उत्तर प्रदेश राज्य जैविक प्रमाणीकरण संस्था, राजकीय उद्यान परिसर आलमबाग लखनऊ से संपर्क कर आवेदन कर सकते हैं या सीधे वेबसाइट www-upsoca-org पर विजिट कर आवेदन कर सकते हैं

2 तरीके से आवेदन किया जा सकता है

1) व्यक्तिगत
2) सामूहिक

पंजीकरण हेतु आवश्यकताएं

1) अगले फसल सत्र हेतु वार्षिक फसल योजना
2) भूमि के दस्तावेज
3) ऑपरेटर का पैन कार्ड
4) ऑपरेटर का आधार कार्ड
5) फार्म मैप जिसके आसपास के फार्मों की स्थिति परिलक्षित हो
6) प्रक्षेत्र का GPS डाटा
7) पंजीकरण शुल्क 2700/7 हे.

निष्कर्ष

कृषि क्षेत्र में भी ऐसी सम्भावनाओं की कमी नहीं है जिनसे सम्मानजनक आय की प्राप्ति की जा सकती है। केन्द्र और राज्य सरकारों की ओर से भी ऐसी योजनाओं और कार्यक्रमों का आयोजन समय–समय पर किया जाता है जिनका उद्देश्य कृषक समुदाय को आधुनिक कृषि तकनीकें अपनाने के लिये प्रेरित करना है। सीमान्त, छोटे और मझोले किसानों के लिये कृषि को लाभदायी बनाने, कम लागत की खेतीबाड़ी की तकनीकों, समेकित कृषि प्रणाली, खेती के साथ पशुपालन, शूकर पालन, मात्स्यिकी, मधुमक्खी पालन, रेशम उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, जैविक खेती, वैज्ञानिक खेती के विभिन्न आयामों आदि पर आधारित तमाम कृषि प्रणालियों और प्रौद्योगिकियों एवं तकनीकों का विकास किया गया है।

खाद, जैव उर्वरक एक संग, दूनी ताकत देय।
उपज लाभ दोनों बढ़े, दाना पौष्टिक होय।

मृदा स्वास्थ का योग-हरी/कार्बनिक खाद प्रयोग।
उत्तम खेती जब-जब कृषक खेत जाये तब।

जैविक-कृषि द्वारा पादप रोग प्रबंधन : रसायनों के उपयोग में कमी एवं बेहतर पर्यावरण

रेखा बलोदी[1]*, नीतीश रतन भारद्वाज[2], रीतू[2], महर्षि तोमर[2] एवं सुनैना बिष्ट[3]

सारांश : रसायनों के अत्यधिक प्रयोग से वातावरण में प्रदूषण, मनुष्य तथा अन्य जीवों में बीमारियों में बढ़ोत्तरी, नाशीजीवों में रसायनों के प्रति प्रतिरोधक क्षमता जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ रहा है। जैविक कृषि के द्वारा इन सभी समस्याओं का सामना किया जा सकता है। जैविक कृषि के अंतर्गत रसायनों का उपयोग कम किया जाता है, तथा जैविक नियंत्रण को बढ़ावा दिया जाता है। जैविक उत्पादों का अधिक प्रयोग करने से पारस्थितिकी तंत्र मजबूत होता है तथा जैविक चक्र सुचारू रूप से चलता है। जैविक कृषि के निरंतर प्रयोग से मिट्टी की उपजाऊ क्षमता में वृद्धि, जैविक विविधता में बढ़ोतरी होती हैं। जैविक कृषि जहाँ एक ओर वातावरण के लिए लाभकारी हैं, वही इसमें रसायनों की तुलना में कम लगात आती है, अतः जैविक कृषि के द्वारा किसानों तथा पर्यावरण को अत्यधिक लाभ हो सकता हैं।

परिचय

1960 के दशक के दौरान हरित क्रांति द्वारा फसलों में उच्च उत्पादकता प्राप्त की गई थी। यह प्रणाली उच्च उपज देने वाले बीज, सिंचाई सुविधाओं और रासायनिक उत्पादों (उर्वरक तथा कीटनाशकों) के गहन उपयोग पर आधारित है। रसायनों के गहन उपयोग से अनाज के उत्पादन में बढ़ोत्तरी हुई, परन्तु पर्यावरण और पारिस्थितिकी तंत्र में असंतुलन पैदा हो गया। रसायनों के अत्यधिक उपयोग के कारण मिट्टी के स्वास्थ्य, भूमिगत जल की गुणवत्ता में कमी आई और इस असंतुलन के कारण पर्यावरण भी प्रदूषित हो गया। परिस्थितिकी तंत्र में उत्पन्न क्षय के कारण रासायनिक उत्पादों के साथ बढ़े हुए अनाज की स्थायी उपलब्धता पर लगातार सवाल उठाए जा रहे हैं। भोजन की स्थायी उपलब्धता के लिए आवश्यक है (अ) उच्च गुणवत्ता और भोजन की किफायती आपूर्ति के साथ पोषक तत्वों की मानव जरूरतों को पूरा करना, (ब) प्राकृतिक संसाधनों की सुरक्षा और गैर–प्रयोज्य संसाधनों के न्यायिक उपयोग, (स) जैविक चक्र और पारिस्थितिक तंत्र प्रक्रियाओं को बनाए रखना, तथा (द) आर्थिक स्थिरता सुनिश्चित करना और किसानों का कल्याण।। इसके अलावा, जनसंख्या में वृद्धि के कारण, स्थायी उत्पादन के साथ–साथ कृषि उत्पादन में भी वृद्धि की आवश्यकता है। जीवाष्म ईंधन से उत्पादित कृषि रसायन गैर–नवीनीकरण योग्य और मात्रा में सीमित होते हैं तथा अधिक लागत डालते हैं, इसी कारण परंपरागत कृषि से जैविक कृषि में परिवर्तन की आवश्यकता है। इसके अलावा, कृषि में कीटनाशकों और उर्वरकों के रूप में रसायनों के उपयोग से बढ़ती मानव स्वास्थ्य समस्या तथा पर्यावरण और पशु स्वास्थ्य पर उनके प्रभाव भी चिंता का विषय है। रासायनिक उत्पादों के बढ़ते दुष्प्रभावों को कम करने के लिए जैविक कृषि एक माध्यम हो सकता है। जैविक कृषि के अंर्तगत फसल प्रबंधन प्रक्रियाओं में कीटनाशकों और रासायनिक उर्वरकों का न्यूनतम या कभी–कभी उपयोग होता है।

जर्मनी के बॉन में स्थित इंटरनेशनल फेडरेशन ऑफ आर्गेनिक एग्रीकल्चर मूवमेंट्स (आई.एफ.ओ.ए.एम.), प्राकृतिक पारिस्थितिकी तंत्र में संतुलन को बनाए रखने, जैविक चक्रों को बढ़ावा देने, कृषि परिस्थितिकी तंत्र में कार्बनिक पदार्थों को बढ़ाने, प्रदूषण में कमी, जैविक विविधता को बनाए रखने और पारिस्थितिकी पर सामाजिक प्रभाव को समझने के उद्देश्यों के साथ काम करता है। कृषि परिस्थितिकी तंत्र में सभी प्रक्रियाएं और घटक एक–दूसरे पर निर्भर हैं और परिणामस्वरूप सभी घटकों को परस्पर प्रभावित करते हैं। उदाहरण के लिए, माइक्रोबियल समुदाय को बढ़ावा देने से फसलों पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप उपज में वृद्धि होती है जबकि रोगजनकों का फसलों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है, जिसके परिणामस्वरूप उपज में हानि होती है। माइक्रोबियल समुदाय (फायदेमंद या हानिकारक) एक–दूसरे को प्रभावित करते हैं जिससे रोग में वृद्धि या कमी आती है। अतः कृषि पारिस्थितिकी तंत्र के घटकों के अंतर–आश्रित व्यवहार तथा प्रत्येक घटक की गतिशीलता को समझना महत्वपूर्ण है।

पारम्परिक कृषि प्रणाली में पोषक तत्वों की जरूरतों, कीटों एवं रोगजनकों के प्रबंधन में उर्वरकों और कीटनाशकों के रूप में रसायनों का उपयोग किया जाता है। इन रसायनों के अवशिष्ट, खाद्य श्रृंखला में हानिकारक पदार्थों के जैव–आवर्धन का कारण बनते हैं और जानवरों एवं मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकारक होते

[1]भा.कृ.अनु.प.–राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबन्धन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली–110012, [2]भा.कृ.अनु.प.–भारतीय चरागाह एवं चारा अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012
[3]रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय, झाँसी, उत्तर प्रदेश –284003. E-mail id: balodirekha30@gmail.com

हैं। जैविक खेती में पारंपरिक कृषि प्रणाली की तुलना में जैविक विविधीकरण, मिट्टी में कार्बनिक पदार्थों का संशोधन एवं परिवर्धन करने से मिट्टी की जैव विविधता बढ़ जाती है। परम्परागत खेती में रसायनों का अधिक उपयोग, कुल खरपतवार हटाने तथा टिलेज, मिट्टी में प्राकृतिक जैविक विविधता को कम करता है और इस प्रकार प्राकृतिक पारिस्थितिक तंत्र प्रक्रियाओं पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। जैविक खेती कम रसायनों, पौधों की विविधता, अधिक माइक्रोबियल बायोमास और गतिविधि तथा बेहतर मिट्टी के स्वास्थ्य (आकृति–1) और जल उपयोग दक्षता को बढ़ावा देती है। पारिस्थितिक तंत्र पर इसके सकारात्मक प्रभाव के कारण, जैविक कृषि से जैव विविधता में वृद्धि होती है और रोगजनकों की आबादी को प्रतिरोधी गतिविधि, पोषक तत्वों और आवास के लिए प्रतिस्पर्धा से कर दिया जाता है।

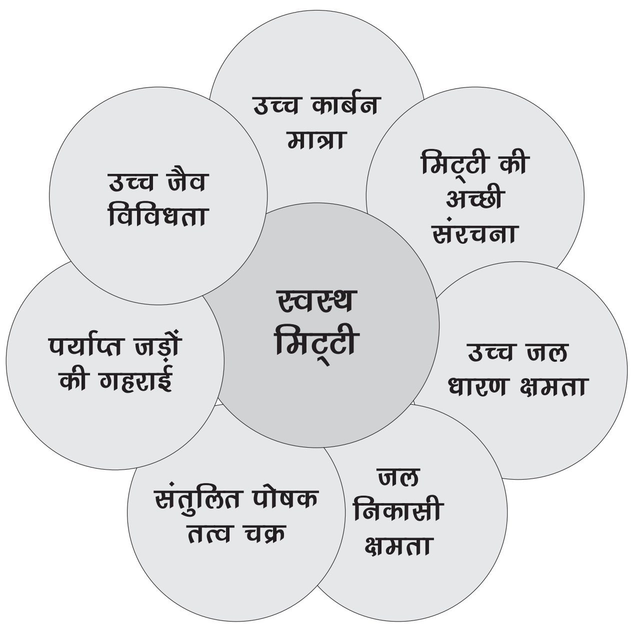

आकृति–1 : स्वस्थ मिट्टी की विशेषताएं

कीटनाशक और रोग प्रबंधन के लिए जैविक खेती की रणनीतियाँ इस प्रकार हैं:

- रोगजनक की स्थापना में व्यवधान – स्वच्छता उपाय, फसल चक्र, प्रतिरोधी किस्मों के बीजों (यदि उपलब्ध हो) का उपयोग और खरपतवारों को हटाना।
- फसल प्रतिरोध द्वारा रोगजनक की आबादी को कम करना– फसलों में प्रतिरोधक क्षमता जीनस द्वारा शासित होती है, जिससे पौधों की आबादी में आनुवंशिक और प्रारूपिक विषमता आती है और जैविक नियंत्रण में योगदान हो सकता है।
- स्थापित रोगजनकों के कारण घाटे को कम करने के लिए उपचारात्मक उपाय – जैविक कृषि में रासायनिक कीटनाशकों के स्थान पर, जैविक नियंत्रण एजेंटों जैसे ट्राइकोडर्मा और स्यूड़ोमोनस का प्रयोग किया जाता है, जो कि स्थापित रोगजनकों की संख्या को कम करते है तथा फसलों की प्रतिरोधी क्षमता को बढ़ाते है।

जैविक उत्पादन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम

सरकार ने 2001 में देश में जैविक खेती को बढ़ावा देने के लिए नेशनल प्रोग्राम फॉर आर्गेनिक प्रोडक्शन (एन.पी.ओ.पी.) राष्ट्रीय कार्यक्रम आरम्भ किया है। एनपीओपी का उद्देश्य जैविक कृषि और उत्पादों के लिए अनुमोदित मानदंडों के अनुसार प्रमाणीकरण के मापदण्ड प्रदान करना है। एनपीओपी प्रमाणन निकायों, राष्ट्रीय (भारतीय जैविक उत्पाद) प्रतीक चिन्ह और इनके उपयोग को नियंत्रित करने वाले नियमों के प्रमाणीकरण के लिए जैविक उत्पादन प्रणालियों के लिए मानदंड और प्रक्रिया के लिए मानक प्रदान करता है। एनपीओपी की प्रक्रिया जैविक उत्पादों के आयात और निर्यात को विनियमित करने के लिए अंतर्राष्ट्रीय मानकों के साथ समक्रमिक की जाती है। पौधों के रोग प्रबंधन के लिए यह जोर दिया जाता है कि निवारक तकनीकों जैसे की फसल चक्र, मल्चिंग, प्रमाणित कीट मुक्त जर्मप्लाज्म का उपयोग, कीट और रोगजनकों के जीवन चक्र में व्यवधान जैसे उपायों को अपनाया जाना चाहिए। तालिका 1 भारत में जैविक कृषि में अनुमत रसायनों, जैविक निविष्टियों की सूची देता है।

तालिका–1: जैविक कृषि में पौधों की बीमारी एवं कीट प्रबंधन के लिए निविष्टियाँ

क्रम संख्या	स्रोत	निविष्टियाँ
1	पौधे और पशु मूल के पदार्थ	नीम आधारित उत्पाद पादप आधारित अर्क उदहारण के लिए लहसुन, पोंगामियाय मशरुम का अक्रय जेलाटीन– कैसिनय क्लोरेला का अर्क
2	मिनरल्स	बेंटोनाइट
3	जैविक नियंत्रण के लिए सुशम जीव	ट्राइकोडर्मा, बेसिल्लस, परजीवी आदि
4	जाल	क्रोमेटिक ट्रैप्स, स्टिकी ट्रैप्स तथा फेरामोंस
5	अन्य	होम्योपैथिक तथा आयुर्वेदिक दवाएं, पादप उत्पाद

(स्रोतः जैविक उत्पादन के लिए राष्ट्रीय कार्यक्रम)

निष्कर्ष

जैविक कृषि पारिस्थितिक संतुलन को बनाए रखने के लिए एक उत्तम विकल्प है। यह कीटनाशकों के उपयोग को सीमित करके स्थूल और सूक्ष्म स्तर पर जैव विविधता में सुधार करता है एवं जैव विविधता और पारिस्थितिक तंत्र प्रक्रियाओं को बढ़ाकर फसलों में प्रतिरोध को बढ़ाता है। जैविक रूप से उत्पादित फसलों में हानिकारक अवशेष नहीं होते हैं और बाजार में उच्च कीमत प्राप्त करते हैं। जैविक कृषि को बढ़ाने के लिए फसल के आधार पर मानकीकृत प्रबंधन प्रथाओं को स्थापित करने की आवश्यकता है। वैज्ञानिक समुदाय को इसे वास्तविक बनाने के लिए कदम उठाने होंगे। जैविक कृषि को अपनाने और सफलता के लिए, यहाँ सुझाए गए पौधें रोग प्रबंधन के उपायों को प्राथमिकता देने की आवश्कता है:

1. प्रतिरोधी फसल किस्मों के विकास के लिए अधिक जोर दिया जाना चाहिए जो जैविक कृषि के लिए सबसे उपयुक्त हैं, जैविक खेतों में कीट और रोगजनकों की उच्च जैव विविधता पाई जाती है, जो कि पारंपरिक खेतों में रसायनों के उपयोग से कम हो जाती है। जैव विविधता में अंतर के कारण, पारंपरिक और जैविक कृषि के लिए प्रतिरोधी किस्मों को वर्गीकृत करना चाहिए।

2.. जैविक कृषि की स्थितियों के तहत यह आवश्यक है कि पर्यावरणीय परिस्थितियों का ध्यानपूर्वक अध्ययन किया जाए ताकि रोगजनक आबादी आर्थिक दहलीज मूल्य के तहत बनाए रखा जा सके। इसलिए, जैविक कृषि के तहत रोगजनक गतिशीलता अन्वेषण के लिए एक और क्षेत्र हो सकता है।

अंत में, जैविक कृषि से बेहतर वातावरण तथा उच्च उत्पादकता प्राप्त की जा सकती है। जैविक कृषि को समर्थन देने और मजबूत करने एवं जैविक भोजन को वास्तविकता बनाने के लिए नीतिगत निर्णयों और वैज्ञानिक हस्तक्षेपों की आवश्यकता है।

एक बार आकर देख कैसा, हृदयविदारक मंजर है।
पसलियों से लग गयी हैं आँतें, खेत अभी भी बंजर है।।

*****

ऐ खुदा बस एक ख्वाब सच्चा दे दें।
अबकी बरस मानसून अच्छा दे दें।।

*****

किसानों से अब कहाँ वो मुलाकात करते है।
बस रोज नये ख्वाबों की बात करते है।।

कृषि आय को दोगुना करने वाली कम लागत की तकनीकें

डॉ. आर.एस. सेंगर

सारांश : मेरठ (उ.प्र.) केन्द्रीय कृषि और किसान कल्याण मंत्रालय के अंतर्गत देश में कृषि अनुसंधान और कृषि शिक्षा का संचालन और प्रबंधन करने वाली शीर्ष संस्था के रूप में भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद (भा.कृ.अनु.प.) के अधीन कार्यरत 103 से अधिक कृषि अनुसंधान संस्थानों, प्रायोजना निदेशालयों और लगभग 700 कृषि विज्ञान केन्द्रों द्वारा इसी क्षेत्र में निरंतर काम किया जा रहा है। इनके द्वारा विशेषकर सीमांत, छोटे और मझोले किसानों के लिए कृषि को लाभदायी बनाने, कम लागत की खेतीबाड़ी की तकनीकों, समेकित कृषि प्रणाली, खेती के साथ पशुपालन, शूकर पालन, मात्स्यिकी, मधुमक्खी पालन, रेशम उत्पादन, खाद्य प्रसंस्करण, जैविक खेती, वैज्ञानिक खेती के विभिन्न आयामों आदि पर आधारित तमाम कृषि प्रणालियों और प्रौद्योगिकियों एवं तकनीकों का विकास किया गया है। इनका उपयोग कर सीमांत किसान भी अपनी छोटी जोतों से साल भर में न सिर्फ कई फसलों का उत्पादन कर सकते हैं बल्कि समेकित मिश्रित कृषि को अपनाकर अतिरिक्त आय आसानी से प्राप्त कर सकते हैं।

प्रस्तावना

इस वास्तविकता से इंकार नहीं किया जा सकता है कि आज भी हमारे देश में बहुसंख्यक किसान सीमांत या लघु कृषकों की श्रेणी में आते हैं। मोटे तौर पर ऐसे कृषकों से आशय है एक हेक्टेयर से कम भूमि जोत वाले   इनमें से अधिकांश किसानों की पैदावार अपने परिवार के लिए गुजर–बसर करने लायक खाद्यान्न के उत्पादन तक ही सिमटी हुई है। सरप्लस उपज तो बहुत दूर की बात है– बाढ़, सूखा या अन्य विपदाओं के कराण किसानों के लिए कभी–कभी तो खेती की लागत भी निकालनी मुश्किल पड़ जाती है। अच्छी उपज मिल भी जाए तो उचित मूल्य मिलना मुश्किल होता है। फलों–सब्जियों जैसी शीघ्र खराब होने वाली फसलों को भी उन्हें मजबूरी में स्थानीय खरीददारों के हाथों में औने–पौने दामों में बेचना पड़ जाता है। ऐसे ही तमाम कारणों के कारण वर्तमान में किसान परिवार के बच्चे खेती को आयअर्जन का आधार बनाने से कतराते हैं और रोजगार की तलाश में शहरों की तरफ पलायन करने को कहीं बेहतर विकल्प समझते हैं। ये ग्रामीण युवा जोश में ऐसे कदम तो उठा लेते हैं पर यह सोच नहीं पाते की शहरी जिंदगी की परेशानयों और अथक मेहनत करने के बावजूद दो जून की रोटियां जुटा पाने के संघर्ष में उनकी जिंदगी उलझकर रह जाएगी। आइए, चर्चा करते हैं ऐसी ही कम लागत वाली कृषि प्रौद्योगिकियों/तकनीकों की जिन्हें परिषद् के विभिन्न अनुसंधान संस्थानों द्वारा तैयार किया गया है। इन्हें छोटे और सीमांत किसान भी बिना ज्यादा निवेश के आसानी से अपना सकते हैं।

मोटे अनाजों से बढ़ाएं आय

इस वर्ग में ज्वार, सांवां, कुटकी, कोड़ों, चेना, कंगनी, रागी जैसे गौण अनाजों का उल्लेख किया जा सकता है। इनमें प्रोटीन, रेशे, विटामिनों आदि की भरपूर मात्रा पाई जाती है। भाकृअनुप–भारतीय खाद्यान अनुसंधान संस्थान, हैदराबाद के वैज्ञानिकों की मेहनत का नतीजा है कि विभिन्न प्रकार के मोटे अनाजों की खेती के लिए उन्नत प्रोद्योगिकियों का विकास संभव हो सका है जिनसे बेहतर गुणवत्ता (78 प्रतिशत तक) के साथ अधिक उपज (58 प्रतिशत तक) भी ली जा सकती है। इन नई तकनीकों में अंतः फसलों (ज्वार–अरहर, ज्वार–सोयाबीन आदि) की खेती से भी अधिक आय प्राप्ति के विकल्प पर जोर दिया गया है। अधिक उपज देने में सक्षम विभिन्न मोटे अनाजों का विकास भी इस क्रम में किया गया है। उदाहरण के लिए ज्वार की अधिक पैदावार देने में सक्षम किस्म ज्वार संकर–सी एस एच 17 का उल्लेख किया जा सकता है। इससे प्रचलित ज्वार की किस्मों की तुलना में 50 प्रतिशत से अधिक उपज संभव है।

जावा सिट्रोनेला से कमाई

विभिन्न औधोगिक एवं घरेलू उपयोगों के कारण इसके तेल की माँग में हाल के वर्षों में काफी बढ़ोत्तरी हुई है। इसके पत्तों से लेमनग्रास की तरह का तेल निकलता है। यह तेल बाजार में 1000 से 1200 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बिकता है। खेती के पहले वर्ष में 150–200 किलोग्राम तथा दूसरें वर्ष से पाँचवे वर्ष तक 200–300 किलोग्राम तक तेल इस बहुवर्षीय घासरूपी फसल की कटाई से प्राप्त हो जाता है। पहले साल ही इसकी बुआई पर खर्च होता है। इसके बाद आगामी वर्षों में इस पर नगण्य खर्च होता है। मोटे तौर पर इससे किसान को शुद्ध लाभ 50–70 प्रतिशत तक

प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष (बायो–टैक्नोलॉजी विभाग)
सरदार वल्लभ भाई पटेल कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय

या 80 हजार रुपये प्रति हेक्टेयर तक मिल जाता है। इस बारे में भाकृअनुप–उत्तर–पूर्व विज्ञान तथा प्रोद्योगिकी संस्थान, जोरहट से अधिकृत जानकारी मिल सकती है।

प्याज और लहसुन–आधारित नई प्रौद्योगिकियाँ

खरीफ मौसम में प्याज एवं लहसुन का उत्पादन कम होता है। इसके पीछे मुख्य रूप से पानी का जमाव, कीटों और रोगों का प्रकोप और खरपतवार जैसे कारक जिम्मेदार हैं। भाकृअनुप– प्याज एवं लहसुन अनुसंधान निदेशालय, पुणे द्वारा खरीफ में भी प्याज उत्पादन की ऐसी प्रौद्योगिकियों का विकास किया गया है जिनके इस्तेमाल से किसान इन फसलों की उत्पादकता बढ़ाकर उच्च कीमत प्राप्त कर सकते हैं। उदाहरण के लिए निदेशालय के मार्गदर्शन में विदर्भ के देउलगांव के एक किसान श्री नामदेवराव अदाऊ का उल्लेख किया जा सकता है जिन्होंने अपनी 4 एकड़ जमीन पर भीमा सुपर प्याज की किस्म से 2.60 लाख रुपये तक की आय प्राप्त करने में सफलता हासिल की।

जल संचय प्रौद्योगिकी से बढ़ी कृषि आय

खेतों में वर्षा जल अमूमन बिना किसी उपयोग के बह जाता है और इसके साथ ही खेत की उर्वर मिट्टी की ऊपरी परत भी चली जाती है। इस समस्या के समाधान के लिए भकृअनुप– केन्द्रीय बारानी कृषि अनुसंधान संस्था,हैदराबाद द्वारा एक विशेष जल संचयन प्रौद्योगिकी को विकसित किया गया है। इसके तहत खेत के निचले हिस्से में तालाब बनाए जाते हैं और खेत के जलबहाव को नालियों के जरिए इस तालाब तक पहुँचाया जाता है। इसका दोहरा फायदा किसानों को मिलता है। पहला तो यही कि सूखे की स्थिति में भी फसलों की सिंचाई के लिए जल की उपलब्धता सुनिश्चित हो जाती है और दूसरा, इस तालाब में मछली पालन से भी अतिरिक्त आय हासिल की जा सकती है।

गन्ना खेती की लागत को कम करने वाले कृषि यंत्र

कृषि श्रमिकों की बढ़ती लागत तथा कृषि उपयोगी पशुओं को पालने का प्रचलन कम होने से गन्ना किसानों के लिए खेती काफी खर्चीली होती जा रही है। इस समस्या को दूर करने के उद्देश्य से भाकृअनुप– भारतीय गन्ना अनुसंधान संस्थान, लखनऊ द्वारा गन्ने की खेती के लिए जरूरी सभी प्रकार के कृषि उपयोगी उपकरणों, यंत्रों का विकास किया गया है। इनकी मदद से गन्ने के खेत की तैयारी, बुआई, निराई–गुड़ाई एवं अन्य कृषि क्रियाओं के खर्च में उल्लेखनीय रूप से बचत संभव है। इनसे बीज और खाद की मात्रा में 15–20 प्रतिशत की कमी, गन्ना पौधों की सघनता में 5–20 प्रतिशत की बढ़ोत्तरी, उत्पादकता में 10–15 प्रतिशत की वृद्धि तथा श्रम लागत में 20–80 प्रतिशत तक की बचत संभव है।

बासमती धान में आईपीएम प्रणाली से लाभ

बासमती धान की अधिकतर प्रजातियों में कीट रोगों से प्रतिरोधकता नहीं होने की वजह से तनाबेधक, पत्ती लपेटक, भूरा फुदका रोग, गंधी बग, शीथ ब्लाईट, बस्ट तथा बकाने जैसे रोगों के कारण उपज में काफी कमी हो जाती है। भाकृअनुप– राष्ट्रीय समेकित नाशीजीव प्रबंधन अनुसंधान केन्द्र, नई दिल्ली के वैज्ञानिकों द्वारा आईपीएम (समेकित कीट प्रबंधन) के स्थान पर विशिष्ट मॉडल विकसित किए गए हैं जिनका फायदा उत्तर प्रदेश, हरियाणा और उत्तराखंड के बासमती धान की खेती करने वाले किसान उठा सकते हैं। इनके प्रयोग से कीटनाशकों के छिड़काव में कमी, संतुलित मात्रा में उर्वरकों का प्रयोग तथा उर्वरक लागत में कमी तथा सिंचाई एवं मजदूरी के खर्च में काफी बचत होती है। इस प्रकार कुल फसल लागत में भी कमी आती है। इतना ही नहीं कम कीटनाशकों के प्रयोग से तैयार ऐसे धान की बाजार में कीमत भी ज्यादा मिलती है।

अंतरवर्ती फसल प्रणाली से भरपूर मुनाफा

इस प्रणाली में एक ही खेत में, एक ही मौसम में एवं एक ही समय में दो या दो से अधिक फसलों का एक साथ उत्पादन किया जा सकता है। इस प्रकार कम लागत में प्रति इकाई क्षेत्रफल से अधिक उत्पादन लिया जा सकता है। इस पद्धति में धान्य फसलों के साथ दलहनी फसलों को भी उगा पाना संभव है। एक सीधी तो दूसरी फैलने वाली फसल लगाने से खरपतवारों का नियंत्रण भी इस अंतरवर्ती फसल प्रणाली में किया जा सकता है। यही नहीं, फसलों को रोगों और कीटों से भी इस विधि से बचाया जा सकता है, जैसे चने की फसल में धनिया को अंतरवर्ती फसल के रूप में उगाने से चने में लगने वाले कीटों की रोकथाम कर अधिक उपज ली जा सकती है।

केन्द्रीय फसलों से आमदनी

आलू और अन्य केन्द्रीय फसलों (कसावा, शकरकंद, जिमीकंद टेनिया, याम अरारूट आदि) की खेती में संलग्न किसान इस फसलों की उपयुक्त किस्में, आधुनिक उत्पादन एवं संरक्षण तकनीकें अथवा प्रसंस्करण प्रौद्योगिकियाँ अपनाकर अपनी आमदनी को उल्लेखनीय रूप से बढ़ा सकते हैं। विश्वास नहीं होगा पर यह सच है कि पश्चिम बंगाल में आलू से मिलने वाली शुद्ध आय, चावल और गेहूं की तुलना में लगभग तीन गुना ज्यादा और इसी प्रकार बिहार में भी आलू से कहीं अधिक मुनाफा परंपरागत फसलों की तुलना में मिलता है। इन केन्द्रीय फसलों से कई तरह के मूल्यवर्धित खाद्य उत्पाद भी बनाए जाते हैं। इनमें प्रमुख तौर पर आलू के चिप्स और कसावा से तैयार किए जाने

वाले स्नैक्स फूड, पास्ता आदि का जिक्र किया जा सकता है। जैव इथेनोल उत्पादन में भी कसावा का कम महत्व नहीं है।

कुमट का महत्व

कुमट एक वृक्ष है जिससे गोंद मिलता है। यह गोंद अत्यंत उच्च गुणवत्ता वाला होता है एवं बाजार में 500 से 800 रुपये प्रति किलोग्राम की दर से बिकता है। इसका उपयोग दवा उद्योग, खाद्य उत्पादों तथा अन्य उद्योगों में किया जाता है। अमूमन ये वृक्ष अर्ध–शुष्क जलवायु और कंकरीली–पथरीली भूमि पर होते हैं। कृषि वानिकी के अंतर्गत इसे बड़े पैमाने पर उगाकर अच्छी–खासी आय साल–दर–साल प्राप्त की जा सकती है। इसके बारे में अधिक जानकारी भाकृअनुप– कृषि वानिकी अनुसंधान संस्थान, झांसी से हासिल की जा सकती है।

जैविक खेती के लिए कृषि पद्धतियां

जैविक उत्पादों या ऑर्गेनिक प्रोडक्ट्स का बाजार मूल्य अधिक मिलने के कारण किसानों का जैविक खेती की ओर बड़ी संख्या में आकर्षित होना स्वाभाविक है। किसानों के बीच जैविक कृषि की बढ़ती लोकप्रियता को देखते हुए 45 फसल फद्धति पर आधारित जैविक कृषि पद्धतियों का विकास किया गया है। इनका प्रचार–प्रसार राष्ट्रीय जैविक कृषि केन्द्र, परंपरागत कृषि विकास योजना तथा राष्ट्रीय बागवानी मिशन के माध्यम से किया जा रहा है।

समेकित कृषि प्रणाली मॉडल

देश के विभिन्न कृषि पारिस्थितिकी क्षेत्रों में कृषि उत्पादकता बढ़ाने के उद्देश्य से लघु एवं सीमांत कृषकों के अनुरूप विविध फसलों, बागवानी उत्पादों, कृषि वानिकी, पशुधन तथा मात्स्तिकी पर आधारित 45 बहु–उद्दमी समेकित कृषि प्रणाली मॉडलों का विकास किया गया है। इनके उपयोग से कृषकों की आय को 1.5–3.5 लाख रुपये तक बढ़ाया जा सकता है। इन कृषि प्रणालियों से संबंधित विस्तृत जानकारी के लिए भाकृअनुप– भारतीय कृषि प्रणाली अनुसंधान संस्थान, मोदीपुरम से संपर्क किया जा सकता है।

आलू उत्पादन के लिए निम्न लागत पद्धति

आलू की खेती में अन्य फसलों की तुलना में कहीं अधिक निवेश करना पड़ता है। इस प्रकार खेती की लागत का करीब 35–40 प्रतिशत बीजों, लगभग 40 प्रतिशत कृषि मजदूरी, 14 प्रतिशत उर्वरकों एवं खाद तथा 7 प्रतिशत सिंचाई पर खर्च हो जाता है। भाकृअनुप– केन्द्रीय आलू अनुसंधान संस्थान, शिमला द्वारा आलू उत्पादन में श्रम, बीज, जुताई, उर्वरक तथा सिंचाई निवेशों में होने वाले व्यय में बचत के लिए विशिष्ट प्रौद्योगिकी विकसित की गई है। किसान इसे अपनाकर कम लागत में आलू उत्पादन कर अधिक मुनाफा कमा सकते है।

इसबगोल की खेती से लाभ

इसबगोल एक महत्वपूर्ण फसल है जो रबी के मौसम के दौरान गुजरात, मध्यप्रदेश और राजस्थान में उगाई जाती है। इसके बीज के आवरण को भूसी के नाम से जाना जाता है और इसमें कई तरह के औषधीय गुण होते है। यह जानकर आश्चर्य होगा कि अंतर्राष्ट्रीय बाजार में इसबगोल की भूसी निर्यात करने वाला भारत एक मात्र राष्ट्र है। इसकी खेती से बड़ी सरलता से 15 से 20 हजार रुपये की कमाई प्रति हेक्टेयर ली जा सकती है। इसकी खेती से जुड़े वैज्ञानिक पहलुओं के बारे में जानकारी के लिए भाकृअनुप– राष्ट्रीय औषधीय एवं सगंधीय अनुसंधान केन्द्र, आनंद से संपर्क किया जा सकता है।

आम के पुराने अनुत्पादक बागों की जीर्णोद्वार प्रौद्योगिकी

वैज्ञानिक अध्ययनों से यह तथ्य सामने आया है कि पुराने और सघन आम के बागों की उत्पादकता में लगभग 30 से 35 प्रतिशत तक की कमी होती जा रही है। भाकृअनुप– केन्द्रीय उपोष्ण बागवानी संस्थान, लखनऊ द्वारा आम के पुराने बागों के जीर्णोद्धार की पद्धति का विकास किया गया है। ऐसे पेड़ों को पुनः उत्पादक बनाने की लागत लगभग 160 रुपये प्रति पेड़ आती है और ऐसे उपचारित पेड़ आगामी 20–25 वर्षों तक फलों का उत्पादन करते रहते हैं। इस प्रकार नए आम के बाग लगाने के निवेश से बचा जा सकता है।

शुष्क क्षेत्रों में सब्जियाँ उगाने के लिए घड़ा सिंचाई प्रौद्योगिकी

जल की कमी वाले क्षेत्रों में फसलों के अधिक उत्पादन के लिए जल–संरक्षण तथा दक्षतापूर्ण जल इस्तेमाल करने से संबंधित नीतियों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। भाकृअनुप–केन्द्रीय मृदा लवणता अनुसंधान संस्थान, करनाल ने सीमित जल का कुशलता से उपयोग कर बेहतर फसलोल्पादन के लिए घड़ा सिंचाई तकनीक की संस्तुति की है। इस पद्धति का नाम इसके प्रमुख घटक घड़े के नाम पर ही रखा गया है। इस प्रणाली से टमाटर की उपज में तीन गुना तथा अन्य सब्जियों में दो गुना लाभ–अनुपात मिलता है। यह अत्यंत साधारण प्रौद्योगिकी है और इस तकनीक की आर्थिकी पूर्णतः घड़ों के जीवन पर निर्भर करती है। इसके तहत धरातल पर रखे घड़ों के विपरीत दबे हुए घड़ों से पानी सीधे मृदा में जाता है और घड़ों की दीवारों से वाष्पन के जरिए जल की हानि नहीं होती है।

गेहूं बीज उत्पादन तकनीक

स्व परागित फसल होने के कारण गेहूं की किस्मों की गुणवत्ता में साल–दर–साल गिरावट आने लगता है। ऐसे में बीजों को 5–6 वर्षों के अंतराल के बाद बदलना जरूरी हो जाता है। बाजार से हर बार नए

बीज खरीदकर बोना खेती की लागत को काफी बढ़ा देता है। इसलिए किसानों के लिए यह जरूरी हो जाता हा कि वे इस्तेमाल के लिए प्रजनक, सत्यापित या प्रमाणित बीज किसी सरकारी अथवा विश्वसनीय स्रोत से खरीदकर न सिर्फ इनका इस्तेमाल करें बल्कि स्वंय इनका बहुगुणन भी करें। इस प्रकार तैयार बीजों का प्रयोग वे अगले सीजन में कर सकते हैं और आकर्षक मूल्य पर इनको बेचकर अतिरिक्त लाभ भी कमा सकते हैं। इस बारे में उपयोगी जानकारी भाकृअनुप– गेहूं अनुसंदान निदेशालय, करनाल द्वारा प्राकशित मार्गदर्शिका से मिल सकती है।

भारत सरकार ही नहीं विभिन्न राज्य सरकारों के कृषि अनुसंधान से जुड़े विभाग और कृषि अनुसधांन संस्थानोंध्कृषि विश्वविद्यालयों में भी कृषक समुदाय के लिए उपयोगी नई और वैज्ञानिक कृषि प्रणालियों का निरंतर विकास किया जा रहा है। इन अद्तन सूचनाओं तथा कृषि संबंधित जानकारियों का प्रचार–प्रसार करने के लिए देश के प्रत्येक जिले (कुछ जिलों में एक से अधिक भी) में कृषि विज्ञान केन्द्रों की स्थापना की गई है। किसान भाई इनके वैज्ञानिकों से सीधें संपर्क कर उन्नत कृषि प्रणालियों से संबंधित जानकारियां एवं प्रशिक्षण भी प्राप्त कर सकते हैं।

जल संग्रहण/प्रबंधन की प्रभावी रणनीतियाँ

भारत में विश्व के मात्र 4 प्रतिशत जल संसाधन की उपलब्धता है जबकि वैश्विक आबादी का 16 प्रतिशत हिस्सा यहीं बसता है। ऐसे में जल संरक्षण और इसके दक्ष उपयोग के महत्त्व को भली–भाँति समझा जा सकता है। जल संरक्षण मोटे तौर पर तीन तरीकों से संभव है– वर्षा जल संरक्षण, नहरी जल प्रबंधन और भूजल संरक्षण।

वर्षा जल संरक्षण

इसमें खेती योग्य क्षेत्र में संचित वर्षा जल के अन्तःसरण (इन्फिल्ट्रेशन) में सुधार के द्वारा मृदा में जल संरक्षण को बढ़ाया जाता है। इस प्रक्रिया में 100 सेंमी चौड़ी क्यारियां, 50 सेंमी गहरे कुंडध्कंटूर के साथ बनाई जाती हैं। अमूमन 5 प्रतिशत की मृदा ढलान एवं वर्षा जहाँ 350–750 मिमी. होती है, उस जगह को इसके लिए चुना जाता है। कूंड के दोनों तरफ फसलों को लगाया जाता है। इसी तरह से कटूर ट्रेंचिंग पद्धति के माध्यम से खाइयों को कृत्रिम रुप से फसल क्षेत्र में कंटूर पंक्तियों के साथ तैयार किया जाता है। यदि वर्षा जल पहाड़ी के नीचे की ओर बह रहा है तो इन खाइयों द्वारा जल को संग्रहित किया जा सकता है। बाद में यह जल मृदा की ऊपरी सतही परतों में फसल विकास एवं उपज वृद्धि के लिए अन्तःसरित हो जाता है। इसी तरह से सीढ़ीदार खेत एवं कंटूर मेड़बंदी पद्धति के अंतर्गत पहाड़ी ढलान को कई छोटे–छोटे ढलानों में बांटते हैं और जल–प्रवाह को रोक कर मृदा में जल अवशोषण को बढ़ावा दिया जाता है। माइक्रो कैचमेंट या सूक्ष्म जलग्रहण तकनीक के जरिए बारानी क्षेत्रों से वर्षाजल को संग्रहित किया जाता है, ताकि उस क्षेत्र की मृदा में सुधार हो सके। इसके तहत मुख्यतः पेड़ों या वृक्षों को उगाया जाता है। एक्स सीटू जल संरक्षण तकनीकों में वर्षाजल अपवाह को फसल क्षेत्र से बाहर संरक्षित किया जाता है। इसके लिए खेत तालाब, चौक डैम आदि का निर्माण किया जाता है।

नहरी जल संरक्षण

नहरी सिंचाई का कुल सिंचाई में लगभग 29 प्रतिशत योगदान है। कुछ नहरें वर्ष भर सिंचाई जल उपलब्ध करवाती हैं जिससे जब भी फसलों को सिंचाई जल उपलब्ध करवाती हैं जिससे जब भी फसलों को सिंचाई जल की जरूरत हो, तुरंत उपलब्ध करवाया जा सकता है। इस तरह से सूखे की स्थिति से फसलों का बचाव किया जा सकता है। कहीं–कहीं पर नहरों के जल को संरक्षित रखने के लिए सहायक जल संचयन संरचनाओं का निर्माण भी किया जाता है।

भूजल प्रबंधन

भूजल हमारे देश में सिंचाई, घरेलू एवं औद्योगिक क्षेत्रों की जल आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए बहुत ही महत्वपूर्ण संसाधन है। भूजल की 91 प्रतिशत खपत कृषि कार्यों में तथा शेष 9 प्रतिशत घरेलू और औद्योगिक उपयोग में होती है। भूजल की प्राकृतिक आपूर्ति बढ़ने के लिए भूभरण अत्यंत आवश्यक है। यह प्राकृतिक पुनःजल आपूर्ति बढ़ने के लिए भूभरण अत्यंत आवश्यक है। यह प्राकृतिक अथवा कृत्रिम तौर पर भी हो सकता है। प्राकृतिक पुनःजल आपूर्ति एक अत्यंत ही धीमी प्रक्रिया है, इसलिए कृत्रिम पुनःभरण को भी प्रभावी ढंग से इस्तेमाल किया जा सकता है। इसके अंतर्गत जल विस्तार, गड्ढों एवं कुंओं से पुनःभरण एवं सतही जल निकायों से पम्पिंग आदि का सहारा लिया जा सकता है।

पोषक तत्वों से भरपूर खाद्यान्न किस्में

देश में कृषि वैज्ञानिकों द्वारा निरंतर पोषक तत्वों से भरपूर नई खाद्यान्न किस्मों का विकास किया जा रहा है। इनमें हाल ही में तैयार भारत की पहली जैव संपूरित गेहूं किस्म डब्ल्यूबू2 का नाम उल्लेखनीय है। इसमें जस्ते की मात्रा 42 पीपीएम है जोकि अन्य प्रचिलत किस्मों की तुलना में 15 प्रतिशत अधिक है। इसके अतिरिक्त इसमें लौह तत्व 40 पीपीएम हैं जो अन्य किस्मों की अपेक्षा 5 प्रतिशत अधिक हैं। उच्च प्रोटीन (12.4 प्रतिशत) और श्रेष्ठ चपाती गुणों वाली यह किस्म पोषण सुरक्षा की द्रष्टि से काफी उपयोगी कही जा सकती है। धान की पहली जिंक से समृद्ध बायो फोर्टीफाईड किस्म डीआरआर धान–45 में 22.6 पीपीएम मात्रा में जिंक की उपस्थिति पाई गई है। अनाज की अन्य

प्रमुख पोषक तत्वों से परिपूर्ण किस्मों में मक्का की पूसा विवेक क्यूपीएम 9 उन्नत की उपयोगिता भी कुछ कम नहीं। है। इसमें विटामिन ए और उच्च मात्रा में ट्रिप्टोफेन एवं लाइसिन की मात्रा पाई जाती है।

निष्कर्ष

अनाज और दलहन के बाद कंदीय फसलें तीसरा महत्वपूर्ण आहार स्रोत हैं। विश्व–स्तर पर प्रत्येक पाँच में से एक व्यक्ति का मुख्य भोज्य आहार कंदीय फसलें हैं। ये फसलें भुखमरी की चुनौती का सामना करने तथा खाद्य सुरक्षा को सुनिश्चित करने की दृष्टि से पोषक तत्वों का खजाना हैं। उदाहरण के लिए शकरकंद की हाल ही में विकसित भू सोना किस्म विटामिन ए के साथ उच्च ऊर्जा, विटामिन बी, सी, के, फास्फोरस एवं पोटेशियम से भी भरपूर हैं। विटामिन ए की कमी से पीडित लोगों के लिए शकरकंद की यह किस्म किसी वरदान से कम नहीं है। इसी प्रकार शकरकंद की भू–कृष्णा किस्म भी काफी महत्वपूर्ण कही जा सकती है जिसमें एंथोसायनिन एवं फ्लेवनायड यौगिक ऑक्सीकरण रोधी गुण वालें होते हैं और ये तत्व शरीर में कैसंर की प्रतिरोधिता को बढ़ाने में मददगार हैं। कसावा या टैपियोका में आलू से लगभग दोगुनी मात्रा में कैलोरी पाई जाती है। कसावा की श्री स्वर्णा किस्म में बीटा कैरोटीन पर्याप्त मात्रा में पाई जाती।

पैर हो जिनके मिट्टी में, दोनों हाथ कुदाल पर रहते है।
सर्दी, गर्मी या बारिश, सब कुछ ही वे सहते है।।
आसमान पर नजर हमेशा, वे आँधी तूफां सब सहते है।
खेतों में हरियाली आये, दिन और रात लगे रहते है।।
मेहनत कर वे अन्न उगाते, पेट सभी का भरते है।
वो है मसीहा मेहनत का, उसको किसान हम कहते है।।

*****

छत टपकती है उसके कच्चे घर की,
फिर भी वो किसान करता है दुआँ बारिश की।
मैं किसान हूँ, मुझे भरोसा है अपने जूनून पर,
निगाहें लगी हुई है आकाश के मानसून पर।

*****

जल संरक्षित करो : जल ही, हमारा आने वाला कल है।

उत्तर प्रदेश में किसानों की आय वृद्धिः पशुधन और कुक्कुट पालन का योगदान

आर के सिंह[1], महेश चंद्र[2] पीयूष कांति मुखर्जी[3]

सारांश : केन्द्र सरकार द्वारा निर्धारित लक्ष्य वर्ष 2022 तक किसानों की आय दो गुनी (DFI) करने की दिशा में चुने गए प्रमुख क्षेत्रों में से पशुपालन, कुक्कुट पालन और मत्स्य पालन को अत्यधिक महत्व दिया गया है। विभिन्न कृषि–जलवायु परिस्थितियों से युक्त उत्तर प्रदेश राज्य कृषि और पशुधन विकास की अपार संभावनाएं और उच्च क्षमता रखता है। यह एक ऐसा राज्य है जहाँ कृषि और पशुधन क्षेत्र में उपलब्ध सुअवसर, उत्पादकता को बढ़ाने के मार्ग में आने वाली सभी बाधाओं को दूर करने में पूर्णतः सक्षम है। पशुपालन और कुक्कुट पालन के माध्यम से किसानों की आय में सुधार करने के लिए राज्य सरकार को इस लेख में सुझाए गए प्रमुख तरीकों को उच्च प्राथमिकता देने की आवश्यकता है।

पशुधन और कुक्कुट आबादी

उत्तर प्रदेश की कुल पशुधन आबादी में सर्वाधिक संख्या (44.6%) भैंस की है, इसके बाद क्रमशः गौवंशीय (28.5%), बकरी (23%), भेड़ (1.97%) और सुअर (1.94%) हैं। उन्नीसवीं पशुगणना, 2012 के अनुसार उत्तर प्रदेश में भैंस की आबादी कुल राष्ट्रीय भैंस आबादी का 28.17 प्रतिशत है, जबकि राष्ट्रीय कुक्कुट आबादी में उत्तर प्रदेश का योगदान मात्र 2.55 प्रतिशत है।

दुग्ध उत्पादन

दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में प्रथम स्थान रखने वाला उत्तर प्रदेश, कुल राष्ट्रीय दुग्ध उत्पादन में प्रति वर्ष लगभग 16.5% (2017–18) का योगदान देता है। परन्तु सकल दुग्ध उत्पादन में उत्तर प्रदेश की भागी दारी समय के साथ निरंतर घटती जा रही है। दुग्ध उत्पादकता में सर्वोच्च स्थान प्राप्त राज्य पंजाब की तुलना में उत्तर प्रदेश में गोवंशीय, भैंस और बकरी की दुग्ध उत्पादकता लगभग आधी है।

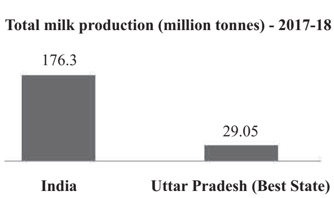

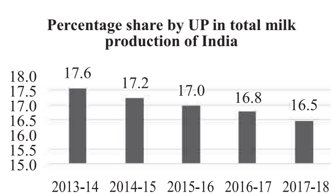

Per Capita Availability of Egg (no./annum)-2017-18

Per Capita Availability of Milk (gm/day)-2017-18

उत्तर प्रदेश में दुग्ध की प्रति व्यक्ति उपलब्धता (359 ग्रामधदिन) राष्ट्रीय दुग्ध उपलब्धता (375 ग्राम/दिन) के लगभग बराबर है परन्तु उच्चतम उपलब्धता वाले पंजाब राज्य (1120 ग्राम/दिन) में लगभग एक तिहाई है।

अण्डा उत्पादन

उत्तर प्रदेश राज्य का कुल राष्ट्रीय अण्डा उत्पादन (2017–18) में योगदान मात्र 2.6 प्रतिशत है। राज्य में कुल अण्डा उत्पादन, सर्वाधिक उत्पादन करने वाले राज्य आंध्र प्रदेश का लगभग 1/8वां है। अण्डों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता में भी उत्तर प्रदेश कई राज्यों से बहुत पीछे है और यहाँ की प्रति व्यक्ति उपलब्धता (11अण्डे/वर्ष) राष्ट्रीय औसत (74 अण्डे/वर्ष) से काफी कम है।

माँस उत्पादन

माँस उत्पादन के क्षेत्र में सर्वश्रेष्ठ राज्य के रूप में पहचान रखने वाला राज्य उत्तर प्रदेश, राष्ट्रीय माँस उत्पादन (2017–18) में अकेले 15 प्रतिशत का योगदान देता है और भारत से निर्यात किये जाने वाले भैंस के माँस में भी अपना सर्वाधिक योगदान देता है। हालांकि, पिछले कुछ वर्षों में राज्य की राष्ट्रीय माँस उत्पादन में प्रतिशत हिस्सेदारी में गिरावट देखी जा रही है और इतना ही नहीं वर्ष 2017–18 में राज्य के माँस उत्पादन में नकारात्मक वार्षिक वृद्धि दर भी दर्ज की गई है।

पशुधन उत्पादन क्षेत्र के प्रमुख मुद्दे

i) गाय और भैंस में बाँझपन की समस्या।

ii) गुणवत्ता वाले हरे चारे और क्षेत्र विशेष हेतु खनिज मिश्रण की उपलब्धता का अभाव।

iii) ग्रामीण क्षेत्रों में कृत्रिम गर्भाधान की सफलता दर (एआई) में कमी।

[1]निदेशक, [2]संयुक्त निदेशक (प्रसार शिक्षा) [3]प्रधान वैज्ञानिक
आईसीएआर–भारतीय पशुचिकित्सा अनुसंधान संस्थान, इज़्ज़तनगर, बरेली –243122

iv) किसानों और गरीबों में निम्न स्तर के तकनीकी कौशल, उधमशीलता और पशुओं में क्रॉस ब्रीडिंग कार्यक्रम की लगभग नगण्य सफलता।

v) छोटे किसानों द्वारा बकरी एवं भेड़ पालन के लिए वरीयता की कमी।

vi) ग्रामीण और सुदूर क्षेत्रों में उपयुक्त पशुवधशालाओं की अनुपलब्धता।

vii) पशु चिकित्सा सेवा के लिए अपर्याप्त बुनियादी ढांचा और अप्रभावी पशुधन सेवा वितरण प्रणाली का होना।

viii) टीकाकरण को प्रभावी बनाने के लिए पर्याप्त हिमीकृत चेन सुविधाओं का अभाव।

कुक्कुट उत्पादन क्षेत्र के प्रमुख मुद्दे

i) अच्छी गुणवत्ता के कुक्कुट जर्मप्लाज्म की उपलब्धता में नितान्त कमी।

ii) कुक्कुट पालन के क्षेत्र में रोगजनक बीमारियों विशेष रूप से रानी खेत रोग, फाउल कॉलरा आदि के कारण होने वाली हानि से निपटने लिए अपर्याप्त सुवधाएं।

iii) पर्याप्त पोषण प्रबंधन तंत्र का अभाव।

iv) हिमीकृत चेन सुविधाओं का अभाव।

v) हैचरी प्रबंधन और कुक्कुट आहार तैयार करने के क्षेत्र में योजनाओ का अभाव।

vi) कुक्कुट और कुक्कुट उत्पादों की बिक्री बढ़ाने की दिशा में प्रभावी विपणन नीतियों का आभाव।

vii) संसाधनों के बेहतर उपयोग के लिए संगठित सहकारी समितियों की कमी।

पशुधन और कुक्कुट पालन की स्थिति को सुधारने के तरीके

वर्ष 2022 तक किसानों की आय को दोगुना करने की दिशा में माननीय प्रधान मंत्री जी के आह्वान ने, प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से किसानों के बीच हितधारकों के रूप में कार्य करने वाले समुदायों जैसे कृषि अनुसंधान के क्षेत्र में कार्यरत वैज्ञानिक समुदाय, नीति निर्माताओं, राज्य प्राधिकरणों, प्रसार एजेंसियों और निजी क्षेत्र के उधमियों में कृषि क्षेत्र को मजबूत करने की दिशा में एक नया उत्साह और रुचि पैदा की है। इस क्षेत्र में सुधार के लिए कृषि के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण को निम्न लिखित बिन्दुओं के अनुसार दिशा देने की जरुरत है

i) संघन एवं एकीकृत खेती से कृषि विविधीकरण की ओर जाना।

ii) कृषि को जीविका का साधन मात्र न मानकर कृषि के व्यावसायीकरण पर जोर देना।

iii) छोटी – छोटी कृषि इकाइयों को कृषि उद्यमों में।

पशुधन और पोल्ट्री क्षेत्र की स्थिति में सुधार करने हेतु आवश्यक योजनाएं

डेयरी व्यवसाय में पशुओं की उत्पादकता को बनाए रखने तथा उनकी उच्चतम आनुवंशिक क्षमताओं का लाभ लेने के लिए पशुओं का पोषण और स्वास्थ्य प्रबंधन बहुत ही महत्वपूर्ण है। पशुओं को परजीवी मुक्त बनाने के लिए पशुओं की नियमित और समय–समय पर डीवॉर्मिंग, आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण प्रमुख बीमारियों (जैसे हेमोरेजिक सेप्टीसीमिया (एचएस), खुरपका मुँहपका (एफएमडी), ब्लैक क्वार्टर (बीक्यू) आदि रोगों के विरुद्ध सामूहिक टीकाकरण और पोषण प्रबंधन (गुणवत्ता युक्त हरा चारा, दाना और खनिज मिश्रण की नियमित आपूर्ति) आदि बहुत महत्वपूर्ण हैं।

पशुओं को खिलाने के लिए गुणवत्ता युक्त हरे चारे की वर्षभर उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए, फसल भूमि का एक तिहाई भाग बारहमासी चारे के उत्पादन के लिए प्रयोग किया जा सकता है। चारे की कम उपलब्धता के समय में बाजरा – नैपियर संकर में हरे चारे की आपूर्ति बनाए रखने की अद्भुत क्षमता होती है।

डेयरी क्षेत्र के उप–उत्पादों को वर्मीकम्पोस्ट उत्पादन के व्यावसायिक मॉडल के लिए प्रयोग में लिया जा सकता है, ऐसा करने से गैर–कृषि क्षेत्र से आय बढ़ने के साथ साथ ग्रामीण युवाओं को वर्मीकम्पोस्ट के उत्पादन और विपणन में संलग्न कर रोजगार के नए अवसर प्रदान किये जा सकता है।

स्वदेशी नस्ल की गायों (साहीवाल, गंगातीरी, थारपारकर आदि) की उत्पादकता बढ़ाना तथा उनके संरक्षण के उपाय करना; जमुनापारी, बारबरी, बीटल, झखराना, सिरोही आदि बकरी की नस्लों को बढ़ावा देना; कृत्रिम गर्भाधान केन्द्रों की सुविधाओं को बढ़ाना;गाय और भैंस प्रबंधन के लिए उचित योजनाएं बनाकर उन्हें मजबूती प्रदान करना, गुणवत्ता युक्त वीर्य की समय पर उपलब्धता सुनिश्चित करना, बछियों की संख्या को बढ़ाने के लिए ''सेक्सेड वीर्य'' की सुविधा उपलब्ध कराना, टीकाकरण और कृत्रिम गर्भाधान (एआई) के प्रभाव को बढ़ाने के लिए हिमीकृत चेन प्रणाली विकसित करना आदि ग्रामीण क्षेत्रों में किसानों की आय को बढ़ाने की दिशा में महत्वपूर्ण कदम सिद्ध हो सकते है।

राज्य के भूमिहीन और लघु किसानों की आर्थिक स्थिति सुधारने के लिए बकरी और मुर्गी पालन के क्षेत्र में उच्च संभावनाएं है।

पीपीपी के माध्यम से दक्षिण पश्चिमी अर्ध–शुष्क क्षेत्र और बुन्देलखण्ड क्षेत्र में बकरी की आबादी में बढ़ोत्तरी, 5 : 1 (मादा : नर) अनुपात वाली

ईकाइयां, बकरी के बच्चों की नर्सरी, मादा बकरी फार्म और बकरी की विभिन्न नस्लों के नाभिक झुण्डों की स्थापना कर बकरी पालन का प्रचार प्रसार पशुपालक किसानों की आय को बढ़ाने की दिशा में एक महत्त्व पूर्ण कदम साबित हो सकता है।

किसानों की आय बढ़ाने के लिए कुक्कुट उत्पादन को बढ़ावा देने की अत्यंत आवश्यकता है क्यों कि यह क्षेत्र आय बढ़ाने की अपार संभावनाओं और क्षमताओं से परिपूर्ण है।

ब्रायलर (माँस उत्पादन) नस्लें – कैरी–ट्रॉपिकाना, कैरी ब्रो, धनराज आदि

अण्डा देने वाली नस्लें – कैरी रेड, व्हाइट लेगॉर्न, आरआईआर, अंकलेश्वर आदि

दोहरे उद्देश्य वाली नस्लें – कैरी देबेन्द्र, कैरी निर्भीक, कैरी श्यामा आदि

शुद्ध देसी नस्लें – असील, कड़कनाथ, निकोबारी (पहाड़ी और तराई क्षेत्रों के लिए अति उपयुक्त है)

उन्नत पोल्ट्री उत्पादन प्रणाली के अंतर्गत समेकित बत्तख–मछली पालन को अपनाया जाना चाहिए जिसमें बत्तख द्वारा तालाब में गिराए गए विष्ट प्रदार्थों को तालाब में पलने वाली मछली के लिए भोजन के रूप में उपयोग किया जा सके।

कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों के अनुसार योजनाएं

उत्तर प्रदेश राज्य को वर्षा और मृदा के आधार पर कुल 9 कृषि जलवायुवीय क्षेत्रों में विभाजित किया गया है –

1. **भाबर और तराई क्षेत्र** – {सहारनपुर (58%), मुजफ्फरनगर (10%), शामली, बिजनौर (79%), मुरादाबाद (21%), रामपुर (40%), बरेली (19%), पीलीभीत (75%), शाहजहाँपुर (6%), लखीमपुर खीरी (39%), बहराइच (47%) और श्रावस्ती (71%)}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं

i) निर्यात के लिए माँस उत्पादन को बढ़ाने हेतु बछड़ों के पालन को बढ़ावा देना।

ii) सूकर पालन को बढ़ावा देना।

iii) व्यापारिक कुक्कुट पालन को और अधिक लोकप्रिय बनाना।

iv) गोवंशीय पशुओं और भैंसों में बांझपन की समस्या के उचित प्रबंधन के लिए क्रस्ट्रोस्कोप का उपयोग करना।

2. **पश्चिमी मैदानी क्षेत्र** – {सहारनपुर (42%), मुजफ्फरनगर (90%), मेरठ, शामली, बागपत, गाजियाबाद, गौतम बुद्ध नगर, बुलंदशहर और हापुड़}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं

i) निर्यात के उद्देश्य हेतु माँस उत्पादन के लिए ब्रायलर भैसों और नर बछड़ों के पालन को बढ़ावा देना।

ii) गोवंशीय पशुओं और भैसों के चारे में में बूस्टरमिन (क्षेत्र विशेष खनिज मिश्रण) के उपयोग को बढ़ावा देना।

iii) भैंस की मुर्रा नस्ल के साथ संकरण कर ''नॉन डिस्क्रिप्ट'' भैंस की नस्लों का उन्नयन / संवर्धन करना।

iv) व्यवसायिक कुक्कुट पालन को बढ़ावा देना।

v) दुग्ध और दुग्ध उत्पादों (जैसे घी, बटर मिल्क, फ्लेवर्ड मिल्क, श्रीखंड, खीर, लस्सी, मिष्टी दही, प्रोबायोटिक दही, पौष्टिक फलों से ब्रांडेड दही आदि) को प्रतिस्थापित कर आर्थिक रूप से लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक वातयुक्त पेय पदार्थों का उपयोग करना।

3. **मध्य पश्चिमी मैदानी क्षेत्र** – {बरेली (81%), बदायूं, पीलीभीत (25%), मुरादाबाद (79%), जे.पी. नगर, रामपुर (60%), बिजनौर (21%) और संभल}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) निर्यात के उद्देश्य हेतु माँस उत्पादन के लिए ब्रायलर भैसों और नर बछड़ों के पालन को बढ़ावा देना।

ii) गोवंशीय पशुओं और भैसों के चारे में बूस्टरमिन (क्षेत्र विशेष खनिज मिश्रण) के उपयोग को बढ़ावा देना।

iii) भैंस की मुर्रा नस्ल के साथ संकरण कर ''नॉन डिस्क्रिप्ट'' भैंस की नस्लों का उन्नयन / संवर्धन करना।

iv) व्यावसायिक सूकर पालन को बढ़ावा देना और उसका प्रचार प्रसार करना।

v) साहीवाल गोवंशीय नस्ल के पशुओं का संवर्धन करना।

vi) दुग्ध और दुग्ध उत्पादों को प्रतिस्थापित कर आर्थिक रूप से लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक वातयुक्त पेय पदार्थों का उपयोग करना।

4. **दक्षिण पश्चिमी अर्ध–शुष्क क्षेत्र** – {आगरा, फिरोजाबाद, अलीगढ़, हाथरस, मथुरा, मैनपुरी, एटा और कासगंज (कांशीराम नगर)}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) बकरी की आबादी बढ़ाने और 1 : 5 (नर : मादा) अनुपात में इकाइयों को विकसित करने के लिए बकरी पालन का संवर्धन करना।

ii) पीपीपी के माध्यम से बकरियों के नर्सरी फार्मों का संवर्धन तथा नाभिक झुंड की स्थापना कर बकरी पालन को बढ़ावा देना।

iii) बकरी की उन्नत नस्लों (जामुनपारी, बारबारी, बीतल, जखराना, सिरोही) को दुधारू बकरी के रूप में लोकप्रिय बनाना। इनके दुग्ध में औषधीय गुण होने के कारण बाजार से उच्च मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

5. **मध्य मैदानीय क्षेत्र –** {शाहजहाँपुर (94%), कानपुर नगर, कानपुर देहात, इटावा, औरैया, फर्रुखाबाद, कन्नौज, लखनऊ, उन्नाव, रायबरेली, हरदोई, लखीमपुर खीरी (61%), सीतापुर, फतेहपुर, इलाहाबाद (58%) – कौशाम्बी}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) साहीवाल गोवंशीय नश्ल के पशुओं का संवर्धन करना।

ii) व्यावसायिक मुर्गी पालन के साथ–साथ अनुबंद पोल्ट्री ब्रॉयलर उत्पादन को बढ़ावा देना।

iii) व्यवसायिक अण्डा उत्पादन को प्रोत्साहित करना।

iv) दुग्ध और दुग्ध उत्पादों को प्रतिस्थापित कर आर्थिक रूप से लाभकारी एवं स्वास्थ्यवर्धक वातयुक्त पेय पदार्थों का उपयोग करना।

6. बुन्देलखण्ड क्षेत्र – {ललितपुर, झाँसी, जालौन, हमीरपुर, महोबा, बाँदा और चित्रकूट}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) बकरी की आबादी बढ़ाने के लिए बकरी पालन को बढ़ावा देना।

ii) पीपीपी के माध्यम बकरी की उन्नत नस्लों (जामुनपारी, बारबारी, बीतल, जखराना, सिरोही) को दुधारू बकरी के रूप में लोकप्रिय बनाना। इनके दुग्ध में औषधीय गुण होने के कारण बाजार से उच्च मूल्य प्राप्त किया जा सकता है।

iii) बैकयार्ड कुक्कुट पालन और व्यावसायिक कुक्कुट उत्पादन दोनों को बढ़ावा देने की दिशा में और अधिक प्रयास करना।

iv) स्वदेशी गोवंश की थारपारकर नस्ल की दुग्ध उत्पादकता में सुधार के लिए विभिन्न तरीकों को प्रोत्साहित करना।

v) आवारा पशुओं की विकट समस्या से निपटने के लिए गाय आश्रयों की स्थापना करना।

7. **उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र –** {गोरखपुर, महराजगंज, देवरिया, कुशीनगर, बस्ती, संत कबीर नगर, सिद्धार्थनगर, गोंडा, बहराइच (63%), बलरामपुर और श्रावस्ती (29%)}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) फैसिओला सहित प्रमुख परजीवी कृमियों के खिलाफ डीवॉर्मिंग अभियान को गति देना।

ii) एफएमडी और एचएस से बचाव के लिए समय पर टीकाकरण करवाना।

iii) कुक्कुट और सूकर पालन को व्यावसायिक और आनुबन्धिक रूप में प्रोत्साहित करने की दिशा में कार्य करना।

iv) व्यापारिक स्तर पर अण्डा उत्पादन को बढ़ावा देना।

v) स्वदेशी नस्ल के गोवंशीय पशु जैसे गंगातीरी, साहीवाल आदि की दुग्ध उत्पादकता में सुधार के लिए कार्य करना।

8. **पूर्वी मैदानी क्षेत्र –** {आजमगढ़, मऊ, बलिया, प्रतापगढ़, फैजाबाद, अंबेडकरनगर, बाराबंकी, सुल्तानपुर, वाराणसी, चंदौली, जौनपुर, गाजीपुर और संत रविदास नगर (86:)}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) कुक्कुट और सूकर पालन को व्यावसायिक और आनुबन्धिक रूप में प्रोत्साहित करने की दिशा में कार्य करना।

ii) व्यापारिक स्तर पर अण्डा उत्पादन को बढ़ावा देना।

iii) निर्यात के उद्देश्य को ध्यान में रख कर माँस उत्पादन के लिए बछड़ा पालन को प्रोत्साहित करना।

iv) पशुओं की उत्पादकता को बढ़ाने के लिए क्षेत्र–विशेष हेतु खनिज मिश्रण और अन्य महत्वपूर्ण पोषक तत्व की आपूर्ति सुनिश्चित करना।

v) ऊन और मटन उत्पादन को बढ़ाने के लिए भेड़पालन को बढ़ावा देना।

9. **विंध्य क्षेत्र –** {इलाहाबाद (42%), संत रविदास नगर (14%), मिर्जापुर और सोनभद्र}

क्षेत्र में विकास हेतु आवश्यक कार्ययोजनाएं –

i) बकरी की आबादी को बढ़ाने के लिए बकरी पालन को बढ़ावा देना।

ii) पीपीपी के माध्यम से बकरियों के नर्सरी फार्मों का संवर्धन तथा नाभिक झुंड की स्थापना कर बकरी पालन को बढ़ावा देना।

iii) बैकयार्ड कुक्कुट पालन और व्यावसायिक कुक्कुट उत्पादन दोनों को बढ़ावा देने के लिए प्रयास करना।

iv) स्वदेशी गोवंश की थारपारकर नस्ल की दुग्ध उत्पादकता में सुधार के लिए विभिन्न तरीकों को प्रोत्साहित करना।

निष्कर्ष

पशुपालन के क्षेत्र को विकास की गति प्रदान करने तथा किसानों की आय बढ़ाने में सहभागिता सुनिश्चित करने की दिशा में पशुधन विकास की योजनाओं को लागू कर उनके क्रियान्वन एवं प्रबंधन के प्रमुख हितधारक के रूप में राज्य पशुपालन विभाग द्वारा, अनुसंधान संस्थानों से तकनीकी सहायता लेते हुए अन्य संबधित विभागों के साथ मिलकर उपरोक्त सिफारिशों को योजनाबद्ध तरीके से लागू कर किसानों की आय को काफी सीमा तक बढ़ाया जा सकता है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिए समेकित भेड़ एवं बकरी का पालन : एक समीक्षा

राजीव कुमार, अमर सिंह मीना एवं अरूण कुमार

सारांश : भेड़ एवं बकरी का पालन बुन्देलखण्ड क्षेत्र के किसानों की आमदनी दोगुनी करने में बहुत कारगर सिद्ध होगा। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में वर्षा की मात्रा एवं दर के आधार पर ऐसी समावेशी खेती पद्धति का विकास करें, जिसमें भेड़ एवं बकरी पालन साथ ही खेती का सीधा जुड़ाव हो। बहुप्रसव भेड़ अविशान को क्षेत्र में पालने से प्रति भेड़ पालक को ज्यादा मेमने मिलने से समान खर्चे में ज्यादा आमदनी होगी। इसी प्रकार बकरी की भी ऐसी नस्ल जो एक से ज्यादा बच्चें दे, जिससे पालने से उनको बेचने पर अतिरिक्त आमदनी मिलेगी, साथ ही भेड़ एवं बकरी पालन से प्राप्त दूध, ऊन एवं मैंगनी का मूल्य संवर्धन से अच्छे उत्पादों में बदलने पर पशु पालक को अच्छा मुनाफा होगा। लघुरोमांथी पशु पालन से आमदनी दोगुनी करने में पशु एवं उनके उत्पादों का बाजार मूल्य पर सही नियंत्रण करने पर ही होगा।

प्रस्तावना :

19वीं पशु गणना के अनुसार विश्व की सबसे ज्यादा पशुपालन की आबादी भारत में है, जो कि करीब कुल पशुधन आबादी का 11.6 प्रतिशत है, इसमें भैंस, गाय, भेड़, बकरी, ऊँट , घोड़े, सुअर, मुर्गी पालन एवं बतख पालन का मुख्य स्थान है। भारत देश में विभिन्न प्रकार की भौगौलिक परिस्थितियाँ पाई जाती हैं। जिस क्षेत्र में खाद्यान्न फसलों की पैदावार अच्छी होती है, वहाँ पर गाय एवं भैंस का पालन अच्छा होता है, क्योंकि इन दोनों पशुओं के पालन के लिए अधिक प्राकृतिक संसाधन की आवश्यकता पडती है तथा लागत भी ज्यादा आती है। भैंस एवं गाय के पालन के लिए सूखा एवं हरा चारा ज्यादा मात्रा में चाहिए होता है, लेकिन शुष्क एवं अर्द्ध–शुष्क भौगौलिक क्षेत्रों के लिए भेड़ एवं बकरी का पालन आसानी से किया जा सकता है, क्योंकि दोनों पशुओं को कम खर्चे एवं कम से कम प्राकृतिक संसाधन की जरूरत होती है। भेड़ एवं बकरी एक ऐसा पशुधन है, जो एकदम बेकार पेड –पौधों के अवशेष से भी अपना भरण पोषण करके मानव की जीविका को बनाए रख सकता है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र, जो कि विगत कई वर्षों से भीषण सूखे का सामना कर रहा है, क्योंकि वहाँ के भौगौलिक वातावरण में वर्षा ऋतु में वर्षा की दर एवं मात्रा में बहुत अधिक अनिश्चितता रहती है। वहाँ पर समावेशी खेती पद्धति अपनाकर भेड़–बकरी का पालन आसानी से मुनाफे के लिए किया जा सकता है। इससे क्षेत्र की वर्तमान समस्या–मानव के पलायन को बहुत सीमा तक रोका जा सकता है। इंतजार एवं सोचो (wait and watch) नीति के अनुसार यदि हम वर्षा के पानी का सही से उपयोग करके ऐसी कृषि प्रणाली विकसित कर लें, जो कम पानी तथा जल्दी तैयार होने वाली हो तथा जिसके फसली अवशेष से विषम–समय में भेड़ एवं बकरी का पालन किया जा सकेगा तथा कुछ खरपतवार एवं अन्य पेड़–पौधे जो वर्षा ऋतु में अपना जीवन चक्र पूरा करते हैं, उनको वर्षा ऋतु के अन्त में सुखा कर भण्डारण करने से भविष्य में अकाल के समय भेड़, बकरी पालन के लिए उपयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार कुछ अपरम्परागत खरपतवार को भी लघु रोमान्थी पशु के लिए हरे एवं सूखे चारे के रूप में काम में लिया जा सकता है। इस कृषि–प्रणाली में हम छोटी अवधि की फसलें, सदाबहार पेड़–पौधों तथा कुछ वर्षा आधारित चारे की फसल आदि का उपयोग करके अधिक से अधिक जैविक चारे का उत्पादन कर सकते हैं तथा वर्षा के पानी को हर खेती में भंडारण करके आधुनिक सिंचाई पद्धति ड्रिप एवं फव्वारे से पानी का बेहतरीन उपयोग कर सकते है। लघु रोमांथी पशुधन जैसे भेड़ एवं बकरी को किसान के एटीएम के रूप में बहुत प्रसिद्धि मिली है, क्योंकि उपरोक्त पशुधन से पालक किसी भी समय माँस, दूध बेचकर पैसा कमा सकता है। उपरोक्त क्षेत्र में हम भेड़ एवं बकरी पालन से कैसे अधिक से अधिक मुनाफा करें, इसके बारे में विस्तार से चर्चा इस लेख में की गई है।

1 भेड़–पालन :

हमारे देश में भेड़ की विभिन्न नस्लें पाई जाती हैं। विभिन्न भौगोलिक परिस्थितियों में भेड़ अपनी उत्तरजीवितिता तथा उत्पादन को बनाये रखने वाला पशु है। शुष्क, अर्द्ध शुष्क तथा वर्षा की दर एवं मात्रा में अनिश्चितता वाले क्षेत्र में भेड़ का पालन करना मानव की जीविका के लिए अच्छा व्यवसाय है। इसके लिए उस क्षेत्र की जमीन में ऐसी खेती को बढ़ावा मिले जिसमें विषम परिस्थितियों में भी भेड़ के चारे के लिए पैदावार ली जा सके। साथ ही कुछ ऐसे पेड़–पौधों, चारे वाली फसलों का भी समेकित खेती

भा.कृ.अनु.प.– केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान,
अविकानगर, मालपुरा –304501(राजस्थान)

के रूप में विकास करने से लघु रोमन्थी पशुधन का लालन–पालन करके मानव के लिए एक अच्छा जीवन चलाने का व्यवसाय हो सकता है। हमारे देश में ज्यादातर भेड़ की नस्लें एक बार में एक ही बच्चे को प्रति ब्यांत जन्म देती हैं, लेकिन भारत के बंगाल तथा उड़ीसा राज्यों में पाई जाने वाली गैरोल एवं केन्द्रपाडा भेड़ की नस्ल प्रति ब्यांत दो–तीन या चार बच्चों को जन्म देती हैं। आस्ट्रेलिया के वैज्ञानिकों ने इसके जिम्मेदार जीन फेकबी का पता लगाया है। फेकबी जीन में एकल न्यूक्लियोटाइड बदलाव से संश्लेषित प्रोटीन में एक अमीनो अम्ल के बदलाव से भेड़ दो,तीन या चार बच्वें प्रति ब्यांत देने की क्षमता आ जाती हैं। भविष्य में बढ़ती माँस की माँग को भेड़–पालन से पूरा किया जा सकता हैं। यदि हमारे देश की ज्यादातर अबहुप्रसव भेड़ की नस्लों को इस फेकबी जीनके समावेश समान खर्चें एवं प्राकृतिक संसाधनों का उपयोग करके भेड़–पालन से दोगुनी आमदनी प्राप्त की जा सकती है। भारत के दो संस्थानों द्वारा गैरोल से फेकबी जीन को देशी अबहुप्रसव संकर नस्ल में समावेश किया जा चुका है। जिससे नये बहुप्रसव संकर क्रास में एक से ज्यादा बच्वें प्रति ब्यांत प्राप्त हो रहे हैं। केन्द्रीय भेड़ एवं ऊन अनुसंधान संस्थान, अविकानगर में तीन देशी नस्लों के सहयोग से अविशान नामक बहुप्रसव भेड़ की नयी नस्ल विकसित की है। जिसमें गैरोल से फेकबी जीन, पाटनवाडी से दूध एवं अधिक शारीरिक भार तथा अर्द्धशुष्क वातावरण में अच्छी स्थापित मालपुरा भेड़ की नस्ल में उपरोक्त गुणों का समावेश किया है, जिससे अधिक बच्चे देने वाली, अधिक शारीरिक भार, अधिक दूध एवं रोग प्रतिरोधक क्षमता युक्त बहुप्रसव नस्ल का विकास हुआ है। बहुप्रजनन नस्ल अविशान व्यापारिक भेड़–पालन के लिए अच्छा वरदान साबित हो सकती है क्योंकि जहाँ समुचित चारे पानी एवं बेहतर पोषण का प्रबंधन हो। वहाँ पर अविशान नस्ल के पालन से अधिक मुनाफा कमाया जा सकता है। इससे भारत देश की बढ़ती माँस की जरूरत को कुछ हद तक पूरा किया जा सकता है।

अविशान अर्द्ध शुष्क वातावरण में विकसित हुई है जो बुन्देलखण्ड के क्षेत्रों में यदि समेकित खेती के साथ पालन किया जाये तो निश्चित ही किसान की आमदनी दोगुनी करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकती हैं। बहुप्रजनन अविशान भेड़ के अतिरिक्त बच्चों को 6–12 माह के लिए अच्छी पोषण प्रबंधन से बेचने पर ज्यादा मुनाफा कमाया जा सकता है। इस तरह देशी नस्ल की अपेक्षा आसानी से डेढ़ से दुगना मुनाफा भेड़ पालक को मिल सकता है। इसी प्रकार भेड़ के दूध, ऊन तथा खाद से भी बेहतर मूल्य संवर्धन से अतिरिक्त लाभ कमाया जा सकता है। भेड़ का दूध एक बहुत ही अच्छा पोषक भोज्य पदार्थ है, जिससे विभिन्न मूल्य संवर्धन तकनीकी से औषधीय गुणोंयुक्त डेयरी उत्पादों का निर्माण किया जा सकता है। जिनके बेचने पर अच्छा मुनाफा मिल सकता है। अभी भी हमारे देश में भेड़ के दूध का अरब देशों तथा यूरोपीय देशों की अपेक्षा आर्थिक रूप में उपयोग नहीं हुआ है। विश्व में इसके दूध के पनीर उत्पाद की बहुत माँग रहती है। आने वाले समय में भेड़–पालन को यदि दूध के लिए प्रजनन तकनीकी चयन किया जाये तो अतिरिक्त मुनाफे के लिए यह एक अच्छा विकल्प साबित होगा। भेड़ की खाद भी धीरे–धीरे से पोषक तत्व मृदा में छोड़ती है। उसको भी विभिन्न फसलों के अवशेष, भेड़ की बेकार ऊन आदि की मिलावटी करके एक अच्छा जैविक खाद हमारे संस्थान ने बनाया है जिसको हमारे देश के शहरी क्षेत्रों के लोगों के द्वारा किचन गार्डन, घर के लॉन तथा गमलों के पेड़ –पौधों के लिए एक अच्छें खाद के रूप में बड़े स्तर पर उपयोग होने की अपार संभावना है। इसकी कार्बनिक खाद को आधुनिक तकनीकी खेती जैसे सब्जियों वाली फसलों के लिए भी उपयोग में लिया जा सकता है। जिससे भी भेड़–पालक को अच्छा मुनाफा मिल सकता है।

2 बकरी–पालन :

भारत में बकरी की विभिन्न नस्ल देश के विभिन्न जलवायु परिस्थितियों में पाई जाती हैं। शुष्क तथा अर्द्धशुष्क वातावरण में भी बकरी की विभिन्न नस्लों की उतरजीवितता तथा अच्छी पैदावार प्राप्त हो सकती है। बकरी की विभिन्न नस्लों से 1.5 लेकर 3 लीटर दूध प्राप्त किया जा सकता हैं। भारत में बकरी पालन की अपार पशु संख्या तथा देश में दुग्ध उत्पादन में तीसरा स्थान है। बकरी के दूध उत्पादन के लिए और ज्यादा प्रयास करने की आवश्यकता है। बकरी का दूध बच्चों के लिए सुपाच्य होता है। इसका दैनिक उपयोग करने से मानव शरीर को अनेक औषधीय गुणों के कारण आधुनिक जीवन शैली की बीमारियों के होने की दर कम करता है बकरी के दूध से विभिन्न औषधीय महत्व के डेयरी उत्पाद बनाये जा सकते है। तथा इसका दूध डेंगू के बुखार में डॉक्टर द्वारा रोगी को पीने की सलाह दी जाती है। भारत तथा विश्व में बकरी के दूध तथा इसके डेयरी उत्पादों की माँग बहुत ज्यादा है। हमारे देश में कुल पशु आबादी की 18 प्रतिशत के करीब बकरी की आबादी है। बकरी पालन को अभी तक दूध के लिए वैज्ञानिक तरीके से पूरी तरह उपयोग में नहीं लिया गया है। अतः बकरी की नस्ल का दूध एवं माँस के लिए वैज्ञानिक तरीके से चयन आवश्यक है। सिरोही–जखराना नस्ल की बकरी माँस एवम दूध के लिए पाले जाने वाली प्रमुख नस्लें हैं। जखराना नस्ल का बेहतर पोषण प्रबंधन इसके दूध की बढ़ोत्तरी के लिए आवश्यक है जो उससे दैनिक 3 से 3.5 लीटर दूध में सहायक सिद्ध होगा।

निष्कर्ष

छोटे लघु रोमन्थी पशुधन जैसे भेड़ एवं बकरी का पालन कम से कम प्राकृतिक संसाधन के उपयोग से भी किया जा सकता है। ऐसे क्षेत्र जहाँ मानसून की दर एवं मात्रा में बहुत ज्यादा अस्थिरता रहती है। वहाँ पर समेकित कृषि प्रणाली को अपनाकर लघु रोमन्थी पशुओं (भेड़ एवं बकरी) का पालन आसानी से किया जा सकता है। वहॉ पर विषम वातावरण के लिए कम पानी से होने वाली फसलों, पेड़–पौधों एवं कुछ चारे वाली फसलों का विकास करना जरूरी है। साथ ही किसान द्वारा वर्षा का पानी अपने फार्म पौन्ड में भंडारण करके फव्वारा या ड्रिप पद्धति से सिंचाई द्वारा कम अवधि की फसलें ली जा सकती हैं तथा उन फसलों के अवशेष को लघु रोमन्थी पशुओं के लिए विषम काल के लिए भंडारण करके भेड़ बकरी पालन आसानी से किया जा सकता हैं। लघु रोमन्थी पशुओं की प्रजनन दर को सुधार करके मुनाफा कमाया जा सकता है। बहुप्रजनन अविशान भेड़ के पालन से अतिरिक्त मेमने के पैदा होने से किसान को ज्यादा मुनाफा होगा। भेड़, बकरी पालन से उनके दूध, ऊन एवम मैंगनी से भी अतिरिक्त लाभ मूल्य संवर्धन उत्पाद बनाने पर किया जा सकता है। भेड़–बकरी पालन से मुनाफा इस बात पर निर्भर करता है कि किसान को पशुओं का वाजिब दाम मिलना चाहिए। तभी भेड़–बकरी पालक की आय दोगुनी हो पायेगी। कृषि तथा पशुपालन में बाजार कीमत का सही दाम से ही किसान को एक निश्चित आमदनी हो पायेगी। बाजार खरीद प्रणाली को मजबूत किये बिना किसान की आमदनी को दोगुना करने का सपना बहुत ही जटिलताओं से भरा है, क्योंकि जब भी कृषि तथा पशुपालन से किसान को अच्छी उत्पादकता मिलती है, तो उस समय उसका बाजार मूल्य बहुत ज्यादा गिर जाता है। जिसके कारण किसान को अपनी लागत की भी वसूली होना मुश्किल हो जाती है। आजकल कृषि तथा पशुपालन के हर उत्पादों को मूल्य संवर्धन से अच्छे उत्पादों में बदला जा सकता है। इसलिए किसान–उद्योग के व्यापार का सीधा सबंध स्थापित होना चाहिए तथा मुनाफे का भी वितरण योगदान आधारित होना चाहिए।

भारतीय भाषाएं नदियाँ हैं और हिन्दी महानदी।

हिन्दी देश के सबसे बड़े हिस्से में बोली जाती है।

हमें इसे राष्ट्रभाषा के रूप में स्वीकार करनी ही चाहिए।

मैं दावे के साथ कह सकता हूँ कि हिन्दी बिना हमारा काम चल नहीं सकता।

जैसे तिनका हवा का रूख बताता है वैसे ही मामूली घटनाएं भी मनुष्य के हृदय की वृत्ति को बताती हैं।

जो पुरूष पवित्र होकर जगत् के लिए अपना सर्वस्व अर्पण कर देता है, वह चक्रवर्ती से भी अधिक सत्ता भोगता है।

गलती स्वीकार कर लेना झाड़ू बुहारने के समान है, जिससे गंदगी का नामो-निशान तक नहीं रहता

– महात्मा गाँधी

बुन्देलखण्ड क्षेत्रों में कृषक समृद्धि हेतु उन्नत चारा उत्पादन तकनीक

उमेश सिंह, संजीव भला, डी.एन. आर्या, श्याम प्रकाश, संजय मोहन गुप्ता एवं मधु बाला

सारांश : बुन्देलखण्ड मुख्य रूप से उत्तर प्रदेश एवं मध्य प्रदेश के कुछ जिलों का लगभग 70 हजार वर्ग किलोमीटर का क्षेत्र है जो की पानी के कमी की समस्या से जूझ रहा है। इन क्षेत्रों में वार्षिक वर्षा केवल 880 मिमी. होती है और कृषि हेतु मुख्य रूप से वर्षा के जल पर ही निर्भर है। जिसके कारण इन क्षेत्रों में पानी की कमी से किसानों की कृषि उत्पादकता में काफी गिरावट रिकॉर्ड किए गए है। पानी की कमी से मुख्य फसलों के साथ–साथ मवेशियों हेतु चारे उत्पादन में भी गिरावट आई है। चारा उत्पादन में कमी होने से इन क्षेत्रों में कृषक समृद्धि भी बुरी तरह से प्रभावित हुई है। अतः इन क्षेत्रों में कृषक समृद्धि को बढ़ाने के लिए उन्नत चारा उत्पादन तकनिको की आवश्यकता है। इन सूखा प्रभावित क्षेत्रों में उन्नत चारा प्रजाति जो कम पानी में भी हरे चारा की उपलब्धता प्रदान कर सके, की आवश्यकता है। इस प्रयास में रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, हल्द्वानी ने सराहनीय शोध कार्य किए है।

प्रस्तावना

भारत में कृषि एवं पशुपालन आर्थिक दृष्टि से एक दूसरे से घनिष्ठता से जुड़े हुए है एवं बुन्देलखण्ड में पशुपालन में आर्थिक स्थिरता की दृष्टि से अपार संभावनाएं हैं। पशुपालन व्यवसाय विशेष रूप से दुग्ध उत्पादन व्यवसाय को सफल बनाने में हरे चारे का विशेष महत्व है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में दुधारू पशुओं का दुग्ध उत्पादन औसतन बहुत कम है, जिसका मुख्य कारण दुधारू पशुओं की जरूरत के अनुसार वर्ष भर पौष्टिक चारे का न मिलना है। हरे चारे से पशुओं के आवश्यक समस्त पोषक तत्व कम कीमत पर उपलब्ध कराये जा सकते हैं परंतु पूरे वर्ष हरा चारा उपलब्ध कराना पशुपालकों के लिए एक कठिन समस्या है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में पशुपालक समीप के क्षेत्रों से प्राकृतिक घास काट कर पशुओं के चारे की व्यवस्था करते हैं। जब तक हरी घास मिलती है पशुओं को हरा चारा मिलता है। बाद में यही प्राकृतिक घासें फूल जाने के बाद तथा सूखने पर काटकर पशुओं को खिलाई जाती हैं जो पौष्टिकता में निम्न स्तर की होती हैं। प्राकृतिक घास की उपलब्धता निरंतर कम होते जाने से पर्वतीय क्षेत्र की महिलाओं को अब चारे के लिए दर–दर भटकना पड़ता है। इस संदर्भ में रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान प्रक्षेत्र पिथौरागढ़ में कुछ प्रमुख एवं उपयुक्त चारे वाली फसलों की उत्पादन क्षमता एवं गुणवत्ता का संक्षिप्त विवरण इस लेख में प्रस्तुत किया गया है।

उन्नत चारे वाली फसलों का चयन

मैदानी क्षेत्रों हेतु (समुद्र तल से 1000 मीटर (3300 फीट) से कम ऊँचाई तक) उन्नत चारे की फसलों में मुख्य रूप से नेपियर (फुले जयवंत, फुले यशवंत, पंत सेलेक्सन–1 थिक नेपियर, एनबी–10, पैरा जाइअंट), सेटारिया (नंदी, हाइब्रिड), गिनी, रोड्स, मारवेल, पैरा, रुजी, मुलेटो, ब्लू पैनिक, अंजन, स्टाइलो, दीनानाथ घास आदि आते है।

नैपियर फुले जयवंत घास

मक्खन घास

रक्षा जैव ऊर्जा अनुसंधान संस्थान, रक्षा अनुसंधान तथा विकास संगठन (डी०आर०डी०ओ०) हल्द्वानी, नैनीताल, उत्तराखंड–263139

पैरा घास

उन्नत चारे वाली फसलों की कृषि तकनीक

1. **कृषि भूमि में चारे उत्पादन की तैयारीः** जब फसल को चरागाह के रूप में उगाना हो तो चरागाह की जमीन पूर्ण रूप से सुरक्षित होनी चाहिए या कम से कम एक फसल लेने तक किसी प्रकार की क्षति नहीं होनी चाहिए। परंतु हरा चारा उत्पादन के लिए जमीन पर ढलान के अनुसार सीढ़ीदार खेत बनाना चाहिए। मिट्टी पलटने वाले हल से 15–20 से॰मी॰ गहरी जुताई की जानी चाहिए जिससे अवांछित पौधों की जड़ें आदि निकालकर बाहर की जा सकें। कार्बनिक खाद की मात्रा खेत की तैयारी के समय अच्छी तरह मिला दें। रासायनिक उर्वरक फास्फोरस व पोटाश की पूरी एवं नत्रजन की आधी मात्रा को खेत की अंतिम तैयारी के समय बुवाई से पूर्व डालना चाहिए तथा शेष नत्रजन की मात्रा को विभाजित कर प्रत्येक कटाई के बाद सिंचाई उपरांत डालना चाहिए।
2. **चारे की नर्सरी तकनीकः** बीज की मात्रा कम प्रयोग करने हेतु यह आवश्यक है कि बीज की पौधशाला में बुवाई करके पहले नर्सरी तैयार करें। इसके लिए क्यारी की लंबाई आवश्यकतानुसार तथा चौड़ाई 1.00–1.20 मीटर एवं उचाई 10–12 से॰मी॰ रखें। क्यारियों की अच्छी तरह से खुदाई की जानी चाहिए तथा सड़ी हुई गोबर की खाद या कम्पोस्ट डाल करके अच्छी तरह मिट्टी में मिलाना चाहिए। प्रत्येक क्यारी में 10–12 से॰मी॰ दूरी पर लंबाई के विपरीत 1–2 से॰मी॰ की गहराई में बीज की बुवाई कतारों में करके हल्के हाथों से धक दें। सामान्य नमी बनाए रखने के लिए हजारा से पानी बराबर देते रहें तथा क्यारियों को पुआल या सुखी घास से ढक कर रखें। तथा जमाव के बाद हटा दें। कुछ चारा घासों/फसलों की बुवाई सीधे तैयार खेत में ही की जाती है। जिन घासों का प्रवर्धन बीज से नहीं होता, वानस्पतिक विधि द्वारा पौधशाला में उनके जड़ित कल्ले तैयार किए जाते हैं।
3. **चारे बुवाई का समय एवं विधिः** जब चरागाह विकसित करना हो तो बीज की बुवाई छिड़काव विधि से की जा सकती है। चारा उत्पादन के लिए बीज की बुवाई अथवा जड़युक्त पौधों का रोपण सदैव कतारों में करना चाहिए। बहुवर्षीय चारे की बुवाई कतार से कतार 50–60 से॰मी॰ एवं पौधे से पौधे 25–30 से॰मी॰ की दूरी पर करना लाभदायक होता है। एक हेक्टेयर भूमि के लिए 500 ग्राम से 1 किलोग्राम बीज से तैयार अथवा 3–6 कुंतल जड़ें पर्याप्त होती हैं। खेतों में चारा किस्म के अनुसार खरीफ के चारे की बुवाई अप्रैल–जुलाई तथा रबी के चारे की बुवाई सितंबर–अक्टूबर तक की जानी चाहिए। शीतोष्ण जलवायु (1500 मीटर से ऊँचे क्षेत्र) में बहुवर्षीय चारे की बुवाई अथवा रोपण का कार्य सितंबर–अक्टूबर में किया जाता है। अधिक ऊँचे क्षेत्र में यह बुवाई मार्च–अप्रैल में की जा सकती है। उष्णकटिबंधीय जलवायु (1500 मीटर तक के क्षेत्र) में बहुवर्षीय चारे की बुवाई अथवा रोपण जुलाई–अगस्त में की जानी चाहिए।

प्रमुख उन्नत चारों की पोषण गुण

घास/फसल का नाम	हरा चारा (कुं./हि.)	सूखी घास (कुं./हि.)	प्रोटीन (प्रतिशत)	प्रोटीन (कुं./हि.)
रुजी घास	755	169	5.8	43
मुलेटो घास	1084	187	9.2	106
पैरा घास	948	168	8.2	78
मारवेल घास	542	191	12.4	67
रोड्स घास	798	290	15.0	120
गिनी घास	956	289	18.7	179
ब्लू पैनिक घास	886	343	7.4	66
मक्खन घास	1050	251	19.2	202

टॉल फेस्क्यू घास	500	131	7.3	37
नंदी सेटारिया घास	2702	659	11.0	341
हाइब्रिड सेटारिया घास	1902	469	12.6	209
थिक नैपियर घास	2348	416	11.5	270
नैपियर एन॰बी॰ 10	1892	328	12.5	237
नैपियर फुले जयवंत	2206	293	17.8	393
नैपियर फुले यशवंत	2092	270	13.5	282
नैपियर पंत सेलेक्सन	4856	1071	12.1	588

4– **चारा कृषि हेतु खाद एवं उर्वरक का उपयोग :** चारे का उत्पादन बढ़ाने के लिए कार्बनिक खाद एवं रासायनिक उर्वरक का उचित मात्रा में प्रयोग लाभदायी एवं आवश्यक है। बुवाई से पूर्व 100–200 कुंतल सड़ी गोबर की खाद प्रति हेक्टेयर डालना चाहिए। नत्रजन, फास्फोरस एवं पोटाश की मात्रा 60–60–40 किग्रा/हेक्टेयर की दर से बुवाई से पूर्व बेसल डोज के रूप में मिट्टी में डाली जानी चाहिए। प्रत्येक कटाई के बाद नत्रजन 30 किग्रा/हेक्टेयर की दर से सिंचाई उपरांत टॉप ड्रेसिंग के रूप में दी जानी चाहिए।

5– **चारा फसलों की सिंचाई :** पौध रोपण के बाद हल्की सिंचाई करनी आवश्यक है। चारे का उत्पादन बढ़ाने में सिंचाई का प्रयोग लाभकारी होता है। खरीफ एवं रबी की फसलों में नमी कम होने पर सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है। परंतु बहुवर्षीय चारे असिंचित क्षेत्रों में उगाये जा सकते हैं। पर्वतीय क्षेत्रों में कृषि योग्य भूमि की कमी, विषम जलवायु एवं आर्थिक स्थिति को देखते हुए उन्नत बहुवर्षीय चारे की किस्मों द्वारा प्रथम वर्ष में बुवाई पर सीमित खर्च करके हर वर्ष बुवाई पर अतिरिक्त खर्च किए बिना कई वर्षों तक हरे चारे का उत्पादन लिया जा सकता है तथा उपलब्धता बढ़ाई जा सकती है।

6– **चारा फसलों की कटाई :** जब पौधे 30–45 से.मी. की ऊँचाई के हो जाए तो हरे चारे के लिए फसल की कटाई जमीन से 4–6 से॰मी॰ छोड़कर करनी चाहिए। ज्यादा देर से कटाई करने पर पौधों में कठोरता एवं उपज में कमी आ जाती है, साथ ही साथ चारे की गुणवत्ता में उतरोत्तर कमी होने लगती है। अतः चारे हेतु फसल की कटाई सदैव निश्चित अवधि के भीतर ही कर लेनी चाहिए। हरा चारा उत्पादन की दृष्टि से नैपियर व सेटारिया तथा गुणवत्ता (कच्चा प्रोटीन) के हिसाब से मक्खन घास, गिनी घास व नैपियर फुले जयवंत सबसे उपयुक्त पायी गयी हैं।

7– **चारा बीज उपपादन एवं भंडारणः** बनाने के लिए फसल में विभिन्न सस्य क्रियाओं जैसे पौध से पौध एवं पंक्ति से पंक्ति की दूरी, खाद एवं उर्वरक प्रबंधन, सिंचाई, निराई–गुड़ाई, खरपतवार, कीट रोग नियंत्रण आदि पर विशेष ध्यान। बीज हेतु फसल की कटाई तब, जब पौधों की बालियों का 60% बीज परिपक्व हो जाए। कटाई के बाद बालियों को सुखाकर मड़ाई करके बीज को अलग करके और सफाई करके अच्छी तरह सुखाने के बाद कपड़े या गनी बैग में भरकर भंडारण करे।

हाइड्रोपोनिक द्वारा चारा उत्पादन की आधुनिक तकनीक

हाइड्रोपोनिक द्वारा पशुपालक अब एक ट्रे में चारा उगा सकते हैं तथा इस चारे को पशुओं को खिलाने के लिए हरे चारे की फसलों व घास के विकल्प के रूप में इस्तेमाल कर सकते हैं। सामान्यतया पेड़–पौधे जमीन पर ही उगाये जाते हैं। ऐसा लगता है कि पेड़–पौधे उगाने व उनके बड़े होने के लिए मिट्टी, खाद, पानी और सूर्य का प्रकाश जरूरी होता है। लेकिन सच यह है कि पौधे या फसल उत्पादन के लिये सिर्फ तीन चीजों पानी, पोषक तत्व और सूर्य के प्रकाश की आवश्यकता होती है। इस तरह यदि हम बिना मिट्टी के ही पेड़–पौधों को किसी तरीके से पोषक तत्व उपलब्ध करा दें तो बिना मिट्टी के भी पानी और सूर्य के प्रकाश की उपस्थिति में पौधे उगा सकते हैं। दरअसल, बढ़ते शहरीकरण और बढ़ती आबादी के कारण जब फसल और पौधों के लिये जमीन की कमी होती जा रही हो तो बिना मिट्टी के पौधे उगाने वाली यह तकनीक काफी उपयोगी होगी। केवल पानी में या बालू अथवा कंकड़ों के बीच नियंत्रित जलवायु में बिना मिट्टी के पौधे उगाने की तकनीक को हाइड्रोपोनिक कहते हैं। विपरीत जलवायु परिस्थितियों वाले क्षेत्रों में चारागाहों के लगातार घटने तथा संतुलित पोषक आहार न मिलने के कारण अच्छे दुधारू नस्ल के पशुओं की हालत चिंताजनक हो रही है। पहाड़ी क्षेत्रों में खासतौर पर सर्दी के दिनों में हरे चारे की कमी व उसकी कम गुणवत्ता पशु

प्रजनन व उत्पादन निम्न होने के मुख्य कारण हैं। इस तकनीक से उन क्षेत्रों में भी चारा उगाया जा सकता है, जहाँ जमीन एवं पानी की कमी है व मिट्टी उपजाऊ नहीं है अथवा विपरीत जलवायु परिस्थितियां है। इससे बारहों महीने पशुओं के लिये पौष्टिक हरा चारा मिल सकेगा।

हरा चारा उत्पादन हेतु कम लागत वाली हाइड्रोपोनिक तकनीक' पर इस संस्थान द्वारा अनुसंधान व विकास का कार्य प्रगति पर है। हाइड्रोपोनिक विधि से चारा उगाने की प्रक्रिया निम्न प्रकार हैः

1– **यंत्र व संरचनाः** पहले यह समझा जाता था कि उच्च–तकनीक वाले ग्रीनहाउस (जिसमें जल, प्रकाश, तापमान व आर्द्रता एक स्वचालित प्रणाली द्वारा नियंत्रित हो) में ही हाइड्रोपोनिक चारा उगा पाना संभव है। परंतु अब यह कम लागत वाले ग्रीनहाउस में भी सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। ग्रीनहाउस व ट्रे रखने के लिए उसके अंदर के रैक को बाँस द्वारा तैयार किया जा सकता है। संरचना कम से कम इतनी बड़ी हो जिसमें एक आदमी अंदर घुसकर कार्य कर सके। सिंचाई बैटरी संचालित नैपसैक स्प्रेयर से की जा सकती है। कम लागत वाले ग्रीनहाउस में अंदर का वातावरण बाहर की जलवायु से अधिक प्रभावित होता है, इसलिए उगाई जाने वाली चारा फसल का प्रकार उस स्थान के जलवायु व मौसम के ऊपर निर्भर रहता है। किसान अपनी आवश्यकतानुसार ग्रीनहाउस का चयन कर सकते है।

2– **अनाज चयनः** अनाज में नमी की मात्रा लगभग 14% व जमाव 90% हो। अनाज खरपतवार, कीट, रोग व धूल–कचरा रहित हो। इस विधि से जौ, जई, मक्का, ज्वार, बाजरा, गेहूँ, लोबिया इत्यादि को सफलता पूर्वक उगाया जा सकता है।

3– **बीज को भिगोना व अंकुरित करानाः** सर्वप्रथम बीज को विधिवत धो लें, पानी में डालने पर ऊपर तैर रहे पदार्थों को निकाल लें तथा बीज को एक निश्चित समय के लिए भिगो दें। तत्पश्चात भीगे बीज़ को जूट के बोरे में अंकुरण के लिए रख देना चाहिए। बीज अंकुरण के लिए सामान्य तापमान

फसल	बीज की मात्रा/ट्रे (3 वर्ग फीट)	भिगाई समय	जमाव तापमान
जौ	1000 ग्राम	12 घंटे	20–24°C
जई	1000 ग्राम	16 घंटे	20–24°C
गेहूँ	1000 ग्राम	08 घंटे	20–24°C
मक्का	1500 ग्राम	16 घंटे	26–30°C

4– **बीजाई व सिंचाईः** अंकुरण के पश्चात बीज को हर एक फसल के लिए निर्धारित मात्रा को हाइड्रोपोनिक ट्रे में एक समान बिछा देते हैं। ट्रे छोटे–बड़े आकार के हो सकते हैं। हर 3–4 घंटे में पानी छिड़कने की जरूरत पड़ती है। ट्रे में छेद होना चाहिए, जिससे कि जितना पौधे को पानी की जरूरत होती है उतना पानी ही रुकता है बाकी पानी निकल जाता है। कुछ समय बाद बढ़ रही हरी पत्ती, जड़ व बीजान्स अंकुर कारपेट का रूप ले लेते हैं जो ऊपर से हरा व नीचे से सफ़ेद दिखता है। हाइड्रोपोनिक तकनीक से पौधों को ज्यादा आक्सीजन मिल जाती है और पौधे ज्यादा तेज गति से पोषक तत्व को सोखते हैं। पोषक तत्वों के घोल में बीज को भिगोना एवं जमाव के बाद उसका छिड़काव हाइड्रोनिक चारे की बढ़वार व पोषकता के लिए लाभप्रद रहता है।

5. **फसल अवधि व उपजः** 7–12 दिनों में बीज के वजन से लगभग 5–8 गुना हाइड्रोपोनिक हरा चारा तैयार हो जाता है।

फसल का नाम	फसल की वर्ष भर की औसत अवधि (दिन)	हाइड्रोपोनिक चारे की वर्ष भर की औसत उपज (किग्रा/3 वर्ग फीट ट्रे)
जौ	8.8	5.4
जई	8.8	5.4
गेहूँ	8.5	5.2
मक्का	9.2	5.5

बीज को भिगोना और अंकुरित कराना

विभिन्न अवस्था में कई फसलें

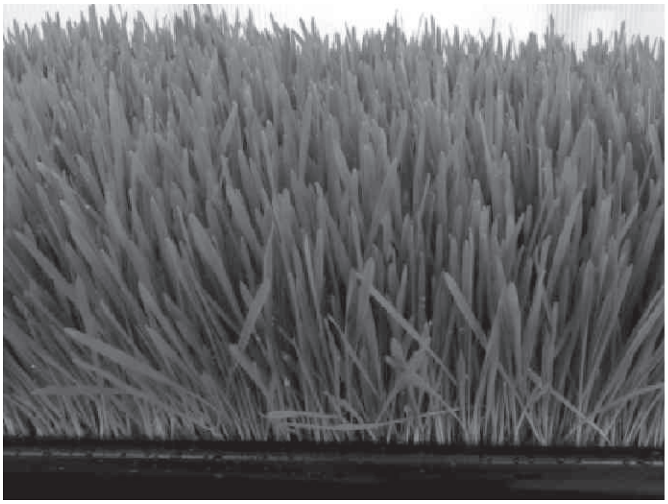

पूर्णरूपेण तैयार हाइड्रोपोनिक चारा

तैयार हाइड्रोपोनिक चारे का कारपेट

निष्कर्ष

अधिकांश पशु हाइड्रोपोनिक द्वारा उत्पादित हरे चारे को बड़े चाव से खाते हैं। कुछ पशु प्रारम्भ में इस चारे को ज्यादा पसंद नहीं करते, परंतु ऐसी स्थिति में 3–4 दिनों बाद इसकी स्वीकार्यता में बढ़ोत्तरी हो सकती है। आने वाले समय में यह तकनीक काफी उपयोगी होगी और मुख्य रूप से बुन्देलखण्ड क्षेत्रों जहाँ पानी की कमी है वहाँ के लिये यह तकनीक किफायती, लाभप्रद एवं उपयोगी अवश्य सिद्ध होगी। इस आधुनिक तकनीकी के उपयोग निश्चित रूप से बुन्देलखण्ड के किसानों की आय में भी वृद्धि होने की संभावना है।

खाद पड़े तो खेत। नहीं तो कूड़ा रेत।
गोबर मैला नीम की खली,
या से खेती दूनी फली।
खेत में नहीं गोबर। किसान है दूबर।

कृषक वैज्ञानिक की दावेदारी।
खाद्य सुरक्षा मेरी जिम्मेदारी।।

श्वेत क्रान्ति तब
भरपूर चारा हो जब।

वैज्ञानिक खेती अपनाओं,
उपज एवं लाभ दोनों पाओं।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र में खरीफ की सब्जियों के प्रमुख रोग एवं उनका उपचार

मनोज कुमार पाण्डेय, अजित कुमार चतुर्वेदी, गोविन्द कुमार चौधरी, रूदल प्रसाद चौधरी एवं प्रभाश चन्द्र सिंह

सारांश : रसायनों के दिन–प्रतिदिन बढ़ते उपयोग से परोक्ष दुष्प्रभावों को किसानों के खेतों में देखा गया है। कवकनाशियों एवं प्रतिजैविक रसायनों के अधिक खुराक से सब्जियों में विभिन्न प्रकार की विषमताएँ आती हैं। किसानों द्वारा कवकनाशी, कीटनाशकों, वृद्वि हारमोन्स और सूक्ष्मतत्वों के मिश्रित प्रयोग से पौधों पर जहीरालापन और असमान्यताएँ होती हैं। इसके लक्षण बैंगन में पतले और बढ़े हुए पर्णपत्र के साथ पत्तियों का मोटा होने के रूप में देखे गए हैं। अनियमित, छितरे हुए फफोले, बैंगन के फलों पर देखे जाते हैं।

परिचय

भारतवर्ष कुल सब्जी उत्पादन में चीन के बाद विश्व में दूसरा स्थान रखता है, लेकिन दुर्भाग्यवश यहाँ सब्जी की उत्पादकता बहुत कम है। विटामिन, खनिज–लवणों एवं रेसा जैसे पोषक तत्वों की प्रचुरता एवं खान–पान में बदलाव के कारण सब्जियों का उपभोग दिन–प्रतिदिन बढ़ रहा है। हमारे प्रदेश में भिन्न–भिन्न जलवायु होने के कारण हर प्रकार की सब्जियॉ पैदा की जाती है। सब्जी उत्पादकता कम होने का प्रमुख कारण सब्जियों में लगने वाले रोग एवं कीट हैं। सब्जियों में रोग उत्पन्न करने के लिए बहुत से रोगकारक जैसे–कवक, जीवाणु, विषाणु, फाइटोप्लाज्मा, सूत्रकृमि इत्यादि जिम्मेदार है, जिनकी वजह से सब्जी के उत्पादन एवं उसकी गुणवत्ता में कमी आती है। सब्जियों में अधिकतर रोग, कवकों द्वारा उत्पन्न होता है। पौध तैयार करने से लेकर उत्पादन, भण्डारण एवं विपणन तक सूक्ष्मजीवों द्वारा होने वाली व्याधियाँ सब्जी उत्पादन में मुख्य बाधाएॅ है।

एकीकृत रोग प्रबन्धन

सब्जियों में सफल पादप रोग प्रबन्धन तभी सम्भव है जबकि निम्नलिखित बातों को हमेशा ध्यान में रखा जाए–

- कवकनाशियों का कम प्रयोग करें एवं अमिश्रणीय जीवनाशियों, पादप वृद्विहारमोन्स एवं सूक्ष्मतत्वों को एक साथ न मिलाएँ।
- मिट्टी लाभदायक एवं हानिकारक दोनों तरह के सूक्ष्मजीवों का भण्डार है। अतः मिट्टी के स्वास्थ का निम्न क्रियाओं द्वारा समुचित प्रबन्ध करना चाहिए जैसे समय से भूपरिष्करण, गर्मी की जुताई, हरी खाद का प्रयोग, अनुकूल कार्बन–नाइट्रोजन अनुपात, सन्तुलित पोषक तत्व एवं समुचित वायु प्रवाह इत्यादि।
- बीज का स्वास्थ आवश्यक रूप से मानक स्तर तक होना चाहिए। सुनिश्चित तौर पर बीज बाह्य एवं आन्तरिक बीजोंद्भिद रोगकारकों, संक्रामित फसल अवशेषों एवं स्कलेरोसिया से मुक्त होना चाहिए
- संक्रमित फसल अवशेषों को इकट्ठा करके जलाना, एकान्तरित एवं सजीतीय खरपतवारों का नियत्रंण करके खेत को साफ रखना चाहिए।
- मृदोद्भिद रोगों के प्रबन्धन के लिए फसल चक्र एक महत्वपूर्ण युक्ति है इसके लिए किसी रोगकारक विशेष के लिए अपोषक फसलों का चयन करना चाहिए।
- बेमौसमी सब्जी की खेती को निरूत्साहित करना चाहिए क्योंकि ऐसा नहीं करने पर रोगकारकों का जीवन चक्र टूटता नहीं है और रोगाणुओं की उत्तरजीविता बढ़ जाती है।
- रोग प्रबन्धन के विभिन्न उपायों के उचित एवं अनुकूल प्रयोग हेतु रोगकारक के जीवन चक्र एवं सही रोग लक्षण बहुत महत्वपूर्ण है जिससे रसायनों का प्रयोग जीवन चक्र की क्रान्तिक अवस्था पर किया जा सके।
- विस्तृत प्रभावी वाली कवकनाशियों का चयन, उचित मात्रा, छिड़के जाने वाले पादप भाग, छिड़काव की विधि एवं बूॅदों के आकार का ज्ञान कवकनाशी की प्रभावशीलता को प्रभावित करते हैं।
- हरी खाद, सड़ी हुई गोबर की खाद या अन्य किसी कार्बनिक तत्व के साथ जैविक कवकनाशियों के मिट्टी में प्रयोग को बढ़ावा देना चाहिए।
- इन जैव कवकनाशियों के साथ अदुष्प्रभावी कवकनाशी रसायानों जैसे कि पेन्सीक्यूरान या कॉपर हाइड्राक्साइड का भी प्रयोग करना चाहिए।

कृषि विज्ञान केन्द्र, बेजवॉ, भदोही–221301 (उ.प्र.)

- सर्वथा रोग सहनशील प्रजातियों को उगाना चाहिए। संकर प्रजातियों में रोग सहनशीलता एवं बीज जनित रोगों का सही ज्ञान करके ही लगावें। रोग से बचने के लिए यथासंभव इनका प्रयोग न करें।

- तोड़ाई पश्चात् सब्जियों का समुचित प्रबन्धन करना चाहिए जिससे सब्जियों को सड़ने एवं उनके बीजों को संक्रमण से बचाया जा सके।

- एकीकृत प्रबंधन की बृहद सफलता के लिए सभी किसानों को सामूहिक रूप से मिलकर पूरे साल की सभी प्रबंधन क्रियाएँ योजनाबद्ध तरीके से अपनानी चाहिए।

पौधशाला में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

- अप्रैल के प्रथम सप्ताह में मिट्टी को अच्छी तरह जुताई एवं गुड़ाई के बाद घास निकालकर आवश्यकतानुसार सड़ी गोबर की खाद, कम्पोस्ट एवं बालू मिलाकर भुरभुरा बना लें।

- पौघशाला की क्यारी को जमीन से 6–8 इंच ऊँचा करके बेड बनावें तथा इसकी चौड़ाई 80–100 सेमी तथा लम्बाई अपनी सुविधानुसार रखें।

- पौघशाला में फव्वारे से हल्का पानी डालकर गर्मी के दिनों में उसको सफेद पालीथिन द्वारा ढ़ककर अच्छी तरह चारों तरफ मिट्टी से बंद कर दें।

- सौर्यीकरण के बाद जब भी जुलाई–अगस्त में पौध डालनी हो तो पालीथिन हटा दें। पौघशाला को पुनः गुड़ाई करके इसमें नीम की बारीक खली 100 ग्राम/मीटर क्षेत्र के हिसाब से डालकर अच्छी तरह मिला दें।

- उसके अगले दिन मिट्टी में ट्राइकोडर्मा नामक जैविक फफूँदनाशक को 25 ग्राम/मीटर क्षेत्रफल की दर से मिलाकर आवश्यकतानुसार पानी छिड़क दें।

- इस तरह से तैयार पौधशाला में बीज का शोधन ट्राइकोडर्मा 3–10 ग्राम/किग्रा बीज की दर से करके लगाना चाहिए।

- बैंगन एवं मिर्च के बीज के लिए कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम/किग्रा बीज की दर से शोधित कर लेना चाहिए। इस तरह की दवा द्वारा शेधित बीज का प्रयोग ट्राइकोडर्मा डालने के लगभग 4–5 दिन के बाद ही करना चाहिए। गोभीवर्गीय सब्जियों को स्ट्रेप्टोसाइक्लिन दवा से शोधित कर लेने की सलाह भी दी जाती है।

- बीज की बुआई करते समय लाइन से लाइन, बीज की दूरी तथा गहराई का पर्याप्त ध्यान रखना चाहिए।

- पौधशाला को मौसम के अनुसार सफेद मक्खी, वर्षा, तेज सूर्य का प्रकाश, अधिक ठण्ड या अन्य बाहरी प्रकोप से बचाने के लिए एग्रोनेट, पालीथीन, मसलीन एवं हरी छाएदार जाली की मेहराबदार संरचना बनाकर प्रयोग करना चाहिए इसको समयानुसार हटा भी सकते है।

- बीज जमने के बाद पुनः ट्राइकोडर्मा का 1 प्रतिशत घोल बनाकर यानी 10 ग्राम/लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह नर्सरी बेड को भिगा दें।

- टमाटर एवं मिर्च में पौध की छोटी अवस्था से ही जीवाणु झुलसा का प्रकोप प्रारम्भ हो जाता है अतः 10–12 दिन के अन्तराल पर 150 पी.पी.एम. यानी 1 ग्राम को लगभग 6–7 लीटर पानी में घोलकर अच्छी तरह छिड़काव करें।

- स्पोडोप्टेरा कीट से संक्रामित पत्तियों एवं पौध को प्रारंभिक अवस्था में ही पौघशाला से निकालकर जला दें।

- पर्ण सुरंगक कीट के संक्रमण से बचाव के लिए पौधशाला में नाइट्रोजन का प्रयोग कम करें तथा नीम की गिरी का 4 प्रतिशत घोल बनाकर यानी 40 ग्राम/लीटर पानी में भिगाकर उसके छनित द्रव्य (अर्क) का छिड़काव करें।

- पौध को उखाड़ते समय पौधशाला में पर्याप्त नमी होनी चाहिए ताकि उसका जड़ टूटे नहीं और रोगाणुओं का संक्रमण नहीं हो सकें।

- पौधे को उखाड़ने के बाद जड़ को इमिडाक्लोप्रिड 0.25 प्रतिशत रसायन के घोल में आधा घण्टा डूबाकर उसके बाद ट्राइकोडर्मा 1 प्रतिशत घोल में भिगोने के बाद रोपाई करें।

टमाटर

अगेती झुलसा

लक्षण :– अगेती झुलसा के लक्षण पौधों के सभी भाग में दिखाई देते हैं। पौघों की क्यारी में अंकुरण पूर्व और पश्चात् आर्द्रगलन भी आता है। रोगग्रसित क्षेत्र सामान्यतः तने के एक तरफ होता है जो धँसकर सिकुड़ जाता है। पत्ती पर धब्बे के लक्षण भूरे टारगेट बोर्ड की तरह गहरे घेरे में छितरे हुए होते हैं। सर्व प्रथम संक्रमण कलियों पर आता है। फलों पर धब्बे गहरे, भूरे, दबे हुए, अस्पष्ट लगातार घेरे के रूप में दिखाई देते हैं। प्रायोगिक क्षेत्र में अगेती झुलसा से उत्पादन में 80–86 प्रतिशत नुकसान अंकित किए गए हैं। रोगकारक बीज एवं मृदा जनित होता है।

तने का पट्टा गलन (कॉलर राट)

लक्षण :– कालर राट रोग भूमि में रहने वाले कवक स्केरोशियम रोल्फसाई द्वारा होता है। लगभग सभी सब्जियों में इस कवक का संक्रमण होता है। प्रत्येक वर्ष 15–20 प्रतिशत संक्रमण होता है। रोग के प्रथम लक्षण में जमीन रेखा के पास तने के छाले में गलन होता है। रोग ग्रसित भाग की वृद्धि स्पष्ट रूप से दिखाई देती है। बाद में उसी भाग पर सफेद हल्के व भूरे सरसों जैसे स्केलेरोशिया बन जाते है। जमीन से सटे फल सड़कर फट जाते हैं और उन पर कवक स्केलेरोशिया बन जाते है।

जीवाणु झुलसा

लक्षण :– टमाटर का जीवाणु पर्णदाग रोग जैन्थोमोनस कम्पोस्ट्रिक पीवी वैसीक्टोरिया नामक जीवाणु से होता है। पौधशाला में ही पौधों में छोटे गहरे रंग के धब्बे पत्तियों एवं तनों पर दिखाई देने लगते है। कई धब्बे आपस में मिल जाते हैं और पूरी पत्ती झुलसी दिखाई देने लगती है। खरीफ फसल में यह रोग ज्यादा प्रभावी होता है। लगभग 30–90 प्रतिशत प्रतिवर्ष इस रोग से पौधे प्रभावित होते हैं। रोग का प्रकोप मुख्तया जुलाई से अक्टूबर तक रहता है। फलों पर छोटे– छोटे, जलीय, गोल धब्बे मुख्तया खुले हुए फल भागों पर बनने शुरू हो जाते हैं। ये धब्बे कुछ उभरे हुऐ खुरदुरे दिखते हैं। रोग की प्रखण्डता तापमान 25–35 डिग्री सेन्टीग्रेट के मध्य एवं नमी 90 प्रतिशत में ज्यादा होती है।

जटिल पर्ण कुचंन (लीफ कर्ल)

लक्षण :– लीफकर्ल रोग सितम्बर से नवम्बर माह में सर्वाधिक आता है। इस रोग से ग्रसित पौधों की पत्तियॉ नीचे की ओर मुड़ी हुई, अनियमित, गुरचन, ऐंठन, हल्की पीली हो जाती है। पौधों में कई इन्टरनोड हो जाने से पौधा छोटा एवं झाड़ीनुमा दिखाई देता है। बाद में इस तरह से संक्रमित पौधों में फूल एवं फल ही बनते हैं। ज्यादातर खेतों में पर्ण कुंचन विषाणु एवं तम्बाकू मोजैक विषाणु साथ–साथ पाए जाते हैं। अतः दोनों के मिश्रित पौधें पर प्रकट होते हैं। अगेती खरीफ के फसल में इस रोग की औसत तीव्रता प्रतिवर्ष 60–65 प्रतिशत तक होती है।

फल छेदक कीट

लक्षण :– यह कीट टमाटर के छोटे फलों में छेद करके उसके गूदे को खाता है जिससे फलों में सुराख बन जाता है तथा पूरा फल नष्ट हो जाता है।

टमाटर में एकीकृत नाशीजीव प्रबन्धन

- खरीफ की पछेती एवं रबी वाली टमाटर की फसल विषाणु रोग से बचने के लिए करें।
- टमाटर के बीज को ट्राईकोडर्मा 1 प्रतिशत तथा इमिडाक्लोप्रिड 2.5 ग्राम/किग्रा. बीज की दर से शोधित करें।
- पौधशाला में एक या दो बार स्ट्रेप्टोसाइक्लीन 150 पी.पी.एम. का घोल अच्छी तरह से छिड़काव करें।
- नर्सरी को नायलोन की जाली से ढॅक कर रखें।
- पौध तैयार होने के बाद रोपाई के समय इमिडाक्लोप्रिड 0.25 प्रतिशत की दर से 30 मिनट जड़ को डुबाकर ट्राईकोडर्मा के 1 प्रतिशत घोल से 10 मिनट डूबा लें।
- टमाटर की रोपाई जहाँ तक संभव हो सके सितम्बर के दूसरे पखवारे के पहले न करें।
- रोपाई के लगभग 20 दिन बाद जड़ के पास ट्राईकोडर्मा के 1 प्रतिशत घोल की दर से भिगावें तथा 15 दिन बाद पुनः दोहराऍं।
- गुरचा, उकठा या अन्य बीमारी वाले संक्रमित पौधें को फसल की प्रारम्भिक अवस्था में उखाड़कर जला दें।
- जीवाणु धब्बा बीमारी लगने पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 200 पी.पी. एम. का घोल बनाकर एक बार छिड़काव करें उसके 15 दिन बाद दूसरी बार छिड़के।
- मेड़ों के चारों तरफ ऊँची मक्के, ज्वार और बाजरा की किस्में लगावें ताकि सफेद मक्खी के संक्रमण से बचाव हो सके साथ ही इसका फसल चक्र भी अपनावें।
- टमाटर के प्रत्येक 15–20 पंक्ति के बाद गेंदे की एक कतार अवश्य लगावें ताकि फल छेदक कीट के अण्डे उस पर आ सके।
- जब टमाटर के ऊपरी पत्तियों पर फल छेदक के अण्डे दिखाई देने लगें तो खेत में अण्डा परजीवी ट्राइकोकार्ड के 2.5 लाख/हे. की दर से प्रयोग करें। उसके 1 दिन बाद पुनः 50 हजार अण्डा परजीवी को खेत में छोड़ दें।
- टमाटर में फूल आने के बाद एच.एन.पी.वी.–300 एल.ई. की मात्रा/हे. की दर से तथा उसमें 1 किग्रा. गुड एवं 0.1 प्रतिशत चिपकने वाले पदार्थ को मिलाकर शाम के समय 10 दिन के अन्तराल पर 3 बार छिड़काव करें।
- रोपाई के लगभग 45 दिन बाद से 4 प्रतिशत नीम के बीज को पीसकर उसका घोल बनाकर 10 दिन के अन्तराल पर तीन बार छिड़काव करें।

- खरीफ टमाटर में कापर आक्सीक्लोराइड 0.3 प्रतिशत की दर से तथा रबी टमाटर में मैकोजेब 0.25 प्रतिशत की दर से 1–2 बार आवश्यक होने पर छिड़काव करे।

मिर्च के रोग–

श्यामवर्ण तथा फल विगलन

मिर्च का यह अति व्यापक रोग है। अनुकूलन वातावरण में इस रोग से काफी हानि होती है।

लक्षण– प्रारम्भ में पौधों की शाखाओं का ऊपरी भाग सूखने लगता है और रोग ऊपर से नीचे की तरफ बढ़ता है। रोगी शाखाओं की पत्तियाँ गिरनी लगती है। यदि इस तरह से रोग का फैलाव कई शाखाओं पर हो गया है तो पौधे की सभी पत्तियाँ सूख कर नष्ट हो जाती है। जब यह रोग फल लगने की अवस्था में आती है, तब पौधे में फल नहीं। या बहुत कम लगते है।

इस रोग का हमला पकती हुई लाल फलियों पर होता है। फलों के ऊपर रोग के लक्षण छोटे–छोटे, काले और गोल धब्बों के रूप में दिखाई पड़ते है। ये धब्बे फल की लम्बाई में किनारों पर गहरे रंग के होते हैं। फल सड़ने लगता है। रोगी फलों को चीरकर देखा जाएं तो उनके अन्दर स्पष्ट कवक जाल मिलता है। छिलके के भीतरी सतह पर अनेक गॉठे मिलती हैं जो कवक के स्केलेरोशियम होते है। फलों के अन्दर के बीज का रंग बदल जाता है और वे बिल्कुल खराब हो जाते हैं। रोगी बीजों को बोने से पौधशाला में आर्द्रपतन रोग के लक्षण दिखाई देते हैं। यह कवक मृदा रोगी फसलों के अवशेषों पर मिट्टी तथा रोगी फलों से प्राप्त बीजों पर जीवित बना रहता है। इसके अतिरिक्त यह कवक अनेक जातियों के पौधों पर पाया जाता है, जैसे धनिया, हल्दी, टमाटर, गेंदा आदि। इस रोग के लक्षण अधिकतर वर्षा ॠतु समाप्त होने पर प्रारंभ होते है, जब रात्रि में काफी ओस पड़ती है। यह ओस की संचित मात्रा रोग संक्रमण के लिए सहायक होती है। छाया में स्थित पौधे कम रोगी होती है। रोग का प्रसार खेतों में हवा तथा वर्षा की बूँदों द्वारा होता है। वायुमंडलीय तापमान 28° सेल्सियस तथा आर्द्रता 95.7 प्रतिशत के ऊपर रोग के लिए अनुकूल होती है।

नियंत्रण

1. बीज स्वस्थ तथा रोग रहित फलों से प्राप्त करना चाहिए।
2. रोगी पौधों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
3. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
4. खेतों की सफाई रखनी चाहिए।
5. खड़ी फसल पर कवकनाशी, जैसे मैंकोजेब 2.0–2.5 किग्रा. या कॉपर आक्सीक्लोराइड 3 किग्रा. 1000 लीटर पानी में डालकर घोल बनाकर तथा प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। छिड़काव की शुरूआत रोग के लक्षण दिखायी पड़ते है। कुल 3–5 छिड़काव 10–15 दिन के अतंराल पर करने चाहिए। छिड़काव करते समय कवकनाशी के साथ ही स्टीकर सैण्डोविट या ट्राइटोन एक लीटर प्रति हेक्टेयर की दर से मिला देना चाहिए।

जीवाणु चित्ती रोग

लक्षण– रोग के प्रारंभिक लक्षण पत्तियों पर छोटे–छोटे गोल या अनियमित आकार के जलीय दाग के रूप में दिखायी पड़ते है। ये दाग पहले चिकने होते है, जो बाद में भूरे रंग के खुरदरे और कुछ उभरे हुए हो जाते है। रोगी पत्तियाँ पीली पड़कर गिर जाती है। रोग का प्रभाव कभी–कभी पत्तियों के डण्ठलों और तनों के कोमल भागों पर भी दिखाई देता है। हरे फलों पर फफोले जैसे दाग बनते है।

इस रोग का जीवाणु टमाटर और मिर्च बीज के अन्दर या सतह पर स्थित बना रहता है और प्रारंभिक संक्रमण करता है। इसके अलावा रोगी पौधों के अवशेषों पर भी कुछ समय के लिए भी यह रोग बना रहता है।रोग का फैलाव खेतों में वर्षा की बूँदों तथा कीटों द्वारा होता है। उच्च आर्द्रता तथा 22–34° सेल्सियस तापमान रोग के विकास के लिए अनुकूल होता है। वायुमण्डलीय तापमान 37.5° सेल्सियस या उससे अधिक कई दिनों तक रहने पर यह जीवाणु मर जाता है। 40–50 दिन के पौधे पर यह रोग जल्दी लगता है।

नियंत्रण–

1. स्वस्थ पौधों से प्राप्त बीज का ही प्रयोग करना चाहिए।
2. बीज को बोते समय किसी भी एग्रोसन जी.एन. एगलाल, सेरेसान, थिरम या टेफासान, इमीसान 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से उपचारित कर लेना चाहिए।
3. फसल चक्र अपनाना चाहिए।
4. खेत के आसपास से खरपतवार निकाल कर साफ कर देना चाहिए।
5. खड़ी फसल पर स्ट्रेप्टोसाइक्लिन 100 ग्राम तथा कॉपर आक्सीक्लोराइड 205 किग्रा. 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखाई पड़ते ही शुरू कर देना चाहिए। कुल 3–5 छिड़काव 15 दिन के अन्तराल पर करने चाहिए।

खीरा वर्गीय सब्जियों के रोग

(1) आर्द्रपतन (डैम्पिंग आफ)

लक्षण– इस रोग के कारण बीज का जमाव नहीं होता है। बीज मुलायम एवं काले होकर सड़ जाते है। थोड़े बड़े पौधे रोग से पीड़ित होने पर लेट जाते हैं या उनके तने जमीन की सतह पर सड़ कर कमजोर हो जाते है। नमी की अधिकता या पानी का अच्छा निकास न होने पर इस रोग का अधिक प्रकोप होता है। यह रोग भूमि में उपस्थित विकल्पी परिजीवी कवकों द्वारा होता है। इस रोग का प्रकोप सभी सब्जियों में समान रूप से होता है। रोग के कारण एवं अनुकूल पर्यावरण एवं रोग प्रबंध आदि का विवरण टमाटर के आर्द्रपतन रोग के समान है।

नियंत्रण–बीज बोने से पूर्व विटावैक्स (0.25 प्रतिशत) से बीज का उपचार। जैविक पदार्थ से बीजोपचार करना चाहिए। कालीसेना या ट्राईकोडर्मा के पाउडर से बीजोपचार से इस रोग को नियंत्रण करने में आसानी होती है।

(2) मृदुरोमिल आसिता

लक्षण– खीरा वर्गीय सब्जियों के प्रायः सभी सदस्य इस रोग से पीड़ित होते है, परन्तु खीरा, तोरई और खरबूज को अधिक हानि होती है। इस रोग के लक्षण सर्वप्रथम पत्तियों की ऊपरी सतह पर हल्के पीले रंग के कोणीय धब्बे के रूप में दिखायी पड़ते है। इन धब्बों के ठीक नीचे पत्ती की निचली सतह पर कवक रूई के समान बैंगनी रंग का दिखायी पड़ती है। यह रूई जैसी कवकीय वृद्धि वातावरण में नमी उपस्थित में अधिक होती है। रोगी पौधे बौने रह जाते है। रोग की तीव्रता के कारण पत्तियाँ पीली पड़कर सुखने लगती है। कभी–कभी पूरा पौधा ही सुख जाता है। फल का आकार छोटा हो जाता है। रोगी पौधों में बने पीले रंग के धब्बे शीघ्र ही लाल–भूरे रंग के हो जाते है। रोगी पौधों में फल अक्सर कच्चे रह जाते हैं और यदि किसी प्रकार पक भी जाए तो उनका स्वाद खराब हो जाता है। अपने देश की जलवायु में काफी भिन्नता के कारण खीरा वर्गीय सब्जियों का कोई न कोई सदस्य देश के किसी भाग में वर्ष भर पाया जाता है। अतः ऐसी अवस्था में बना रहता है। इस कुल से संबंधित अन्य जंगली पौधे भी साल भर रहते है, जिन पर यह कवक तंतु एवं बीजाणु के रूप में उपस्थित रहता है। फसल की अनुपस्थित एवं प्रतिकूल अवस्था आने पर कवक सुशुप्तावस्था (निशिक्ताड़) के रूप में मिट्टी में भी उत्तरजीवी बना रहता है जो अगले फसल–काल में अनुकूल वातावरण मिलने पर रोग का संक्रमण करता है। नम तथा ठण्डा वातावरण रोग की उग्रता के लिए सहायक होता है। रोग का आक्रमण 18–20^{o} तापमान पर अच्छी तरह होता है। साथ ही साथ वातावरण में शत–प्रतिशत आपेक्षिक आर्द्रता का होना आवश्यक है। रोग का प्रसार सुबह के समय 6–10 बजे के बीच अधिक होता है एवं फैलाव एक से दूसरे खेत में वर्षा की बूंदों, हवा एवं खीरे के भृगों द्वारा होता है।

नियंत्रण

1. फसल चक्र अपनाएं।
2. फसल के अवशेषों को जलाकर नष्ट कर देना चाहिए।
3. रोगी बेलों को काट देना चाहिए तथा खड़ी फसल पर मैंकोजेब या राइडोमिल एम.जेड. 72, 7.5 किग्रा. 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखायी पड़ते ही कर देना चाहिए तथा 10–15 दिन के अंतर पर कुल 3–4 छिड़काव करना चाहिए।

(3) फल विगलन

लक्षण– इस रोग के लक्षण फलों पर पतले गहरे रंग के घब्बे के रूप में उत्पन्न होते है। ऐसे फल छूने पर काफी मुलायम मालूम पड़ते है। कुछ समय बाद फल धब्बे वाले स्थान सेसड़ने लगता है। नम मौसम में रोगी भागों पर रूई जैसे कवक की बढ़वार दिखायी पड़ती है। फल बिगलन के कारण फलों में से एक प्रकार की दुर्गंध आती है। भूमि सतह के संपर्क में रहने वाले फलों में रोग लगने की संभावना अधिक होती है। सामान्य परिस्थितियों में रोग पानी बरसने के पश्चात अधिक होता है। भण्डारण के समय यदि कोई रोग्रस्त फल–फुल से भंडार में पहॅुच जाए तो अन्य स्वस्थ फलों में भी यह रोग लग जाता है।

यह रोग फूलों पर हमला करके उन्हें सड़ा देता है। कुछ समय बाद इन फूलों पर कवक का रूई जैसा जाल दिखायी देने लगता है। बाद में यह रोग फलों पर फैल जाता है और उन्हें सड़ा देता है। रोगी स्थानों पर कवक की बढ़वार रूई जैसी बैंगनी काले रंग के साथ रख देने पर बाजार पहुँचने तक बड़ी मात्रा में फल सड़ जाते है।

अधिक नमी और उच्च तापमान होने पर रोग का प्रकोप व्यापक होता है।

नियंत्रण

1. रोगी पौधों के अवशेषों को जलाकर या दूर मिट्टी में दबाकर नष्ट कर देना चाहिए।
2. जल निकास का समुचित प्रबंध करना चाहिए।
3. बेलों को चढ़ाने के लिए सहारा देना चाहिए ताकि फल जमीन न छुएं। इसके अलावा भूमि पर बेलों एवं फलों के नीचे पुआल, सरकण्डे या ऐसी ही अन्य चीजें बिछाना लाभकारी होता है।

4. फलों को तोड़ते समय या खेत में घर या बाजार ले जाते समय ध्यान रखना चाहिए कि फलों पर घाव या खरोंच न आने पाए।

(4) चूर्णिल आसित

लक्षण–रोग के लक्षण सर्वप्रथम सामान्यतः पत्ती की ऊपरी सतह एवं नए तनों पर सफेद चूर्ण लिए धब्बों के रूप में उत्पन्न होते है। धब्बों पर उपस्थित चूर्ण बिल्कुल टैल्कम पाउडर से मिलता–जुलता है। बाद में पौधों का ऊपरी भाग पीला पड़कर सूखने लगता है तथा चूर्णी धब्बों का रंग भूरा हो जाता है। वास्तव में यह चूर्णी रोगजनक कवक के कवक तंतुओं एवं बीजाणुओं का बना होता है। रोगी पत्तियाँ गिर जाती हैं। पौधों की वृद्धि रुक जाती है और फल को अधिक होने लगती है। यह रोग खीरा वर्गीय सभी सब्जियों में होता है, लेकिन काशीफल और कद्दू की सब्जियों में अधिक हानि होती है।

रोग का प्रसार एक से दुसरे स्थान तक हवा के द्वारा होता है जो खीरा वर्ग की फसलों को प्रभावित करता है। यदि मौसम में ओस की मात्रा अधिक हो तो रोग का संक्रमण आसानी से हो जाता है। 16–23 दिन पुरानी पत्तियों में रोग का आक्रमण अधिक होता है जबकि सबसे नयी पत्तियों में रोग जल्दी नहीं लगता है। इन कवको के आक्रमण के लिए वातावरण में 46 प्रतिशत के ऊपर आपेक्षिक आर्द्रता का होना नितांत आवश्यक होता है। 26–28^0 सेल्सियस तापमान रोग संक्रमण के लिए अनुकूल होता है।

नियंत्रण

1. खेतों में या उसके समीप उपस्थित खीरा वर्ग के जंगली पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. रोगी पौघों के अवशेषों को इक्ट्ठा कर के नष्ट कर देना चाहिए।
3. जैसे ही रोग के लक्षण दिखाई पड़े, सल्फेक्स 2 किग्रा., कैलेक्सिन 1 लीटर या कैराथेन 600 मिली. 1000 पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। गंधक का चूर्ण (200 मेश) 25–30 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से बुरकाव भी कर सकते है। कुल 3–4 बार छिड़काव या बुरकाव 10–15 दिन के अंतराल पर देना चाहिए। इससे पूर्व रूप से रोग की रोकथाम हो जाती है। इन कवक नाशी रसायनों के छिड़काव के समय इस बात का ध्यान रखे कि यदि वातावरण का तापमान 3^0 सेल्सियस से ऊपर हो तो गंधक जैसे कवक नाशियों का छिड़काव नहीं करना चाहिए। ऐसा करने से उच्च तापमान पर इन कवक नाशियों का दुष्प्रभाव फसलों पर पड़ता है।

(5) सर्कोपोरा पर्ण चित्ती

लक्षण– इस रोग के कारण प्रारंभ में पत्तियों पर छोटे–छोटे गोलाकार या अनियमित आकार के जलीय दाग दिखायी पड़ते है। ये धब्बें बाद में बढ़कर बड़े आकार के लगभग कुल मिली. से लेकर सेंटीमीटर व्यास के हो सकते है। धब्बे के बीच का भाग भूरा, सफेद या घसर रंग का और किनारे गहरे या काले रंग के होते है। इस प्रकार के धब्बे प्रायः पत्तियों के नसों के बीच में ही पाए जाते है। रोगी पत्तियाँ मुरझा जाती है और झुलती सी मालूम पड़ती है। कभी–कभी पूरा पौधा ही सूख जाता है। तनों एवं पत्तियों के डंठलों पर भी सामान्य रूप से धब्बे के निशान बनते है। यह कवक मिट्टी में गिरे फसल के अवशेषों या मिट्टी में काफी दिनों तक उत्तर जीवी बना रहता है। रोग का फैलाव एक से दूसरे स्थान तक हवा के द्वारा होता है रोग संक्रमण के लिए अधिक नमी तथा तापमान 26–30^0 सेल्सियस अनुकूल होता है।

नियंत्रण

1. बोने के लिए बीज स्वस्थ पौधों से ही प्राप्त करनी चाहिए।
2. फसल चक्र अपनाना और जल–निकास का अच्छा प्रबंध करना चाहिए।
3. बीज का उपचार एवं खड़ी फसल पर कवक नाशियों का छिड़काव श्यामवर्ण रोग के समान करना चाहिए।

(6) आल्टर्नेरिया पर्णचित्ती

लक्षण– प्रारंभ में रोग के लक्षण पुरानी पत्तियों पर छोटे–छोटे गोलाकार धब्बों के रूप में बिखरे हुए दिखाई देते है। ये आकार में बढ़कर लगभग एक से डेढ़ मिली. व्यास तक हो जाते है। धब्बे के मध्य में गोल–गोल छल्ले जैसे निशान बनता है। कई धब्बों के आपस में मिलने से बड़े क्षेत्र का निर्माण हो जाता है। रोगी पत्तियाँ पीली होने लगती है तथा किनारे मुड़ जाते है और कुछ दिनों में सिकुड़ जाती है। खरबूजा, खीरा और काशीफल पर धब्बों का रंग हल्का भूरा तथा तरबूजा पर गाढ़ा भूरा या काला होता है। इस रोग का प्रभाव फलों पर भी पड़ता है। रोगी फल पुष्पाग्र भाग से सड़ने लगता है और अंत में फल भूरा हो जाता है। ऐसी रोगी फल सिकुड़ जाता है और अंततः सड़ जाता है।

यह कवक रोगी पौधे के अवशेष पर एवं मिट्टी में उत्तरजीवी बना रहता है। कवक का प्रसार हवा तथा कीट द्वारा होता है। रोग संक्रमण के लिए कम से कम 18 घण्टे के लिए उच्च आपेक्ष आर्द्रता की आवश्यक होती है। अतः वर्षा की मात्रा की अपेक्षा पत्तियों के सतह का अधिक समय तक गीला रहना संक्रमण के लिए अधिक महत्वपूर्ण है। 15–32^o सेल्सियस तापमान रोग के लिए अनुकूल होता है। नये पौधों के अपेक्षा पुराने पौधों पर रोग अधिक लगता है।

नियंत्रण– इस रोग का प्रबंधन सर्कोस्पोरा पर्णचित्ती रोग के समान है।

तरबूज की फ्यूलेरियम ग्लानि

लक्षण– यह रोग पौधों के वृद्धि काल में किसी भी अवस्था में लग सकता है। यदि पौधों पर रोग का प्रकोप शुरू से ही हो गया है तो पौध गलन रोग का लक्षण उत्पन्न होते है। रोगी पौधों का बढ़वार रूक जाती है। पत्तियाँ पीली होने लगती है। रोगी पौधों की बेले मर जाती है तथा जड़े सड़ जाती है। ऐसे रोगी पौधे की तने को चीर कर देखा जाए तो भीतरी भाग भूरा दिखाई पड़ता है। नम मौसम में रोगी तनों के ऊपर कवक की बढ़वार सफेद या गुलाबी रंग की दिखाई पड़ती है।

तरबूज की वृद्धि के लिए उपयुक्त मृदा आर्द्रता कवक की वृद्धि के लिए भी उपयुक्त होती है। यदि मृदा तापमान 15.5° सेल्सियस से नीचे तथा 35° सेल्सियस से ऊपर है, तो रोग लगने की संभावना काफी घट जाती है। रोग के आक्रमण के लिए तापमान 24–28° सेल्सियस अनुकूल होता है। रोग का फैलाव खेतो में सिंचाई के पानी से होता है।

नियंत्रण– ग्लानि रोग का प्रबंध एक जटिल समस्या है। यह कवक मृदा में कई वर्षों तक उत्तरजीवी बना रहता है। अतः निम्नलिखित सुझावों से रोग की व्यापकता कम की जा सकती है।

1. रोगी पौधों को समूल उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. कम से कम 10 वर्षो के फसलचक्र में इस वर्ग की फसलों को नहीं लगना चाहिए।
3. बीज को बोते समय कार्बेन्डाजिम 2.5 ग्राम प्रति किग्रा. बीज दर से मिलाकर उपचारित कर लेना चाहिए।
4. खड़ी फसल में उपयुक्त दवा का घोल बनाकर रोगी पौधों के तनों व जड़ों के पास डालनी चाहिए।

खरबूजे का ग्लानि रोग

लक्षण– रोग के लक्षण तरबूज के ग्लानि रोग से काफी मिलते–जुतले है।

यह कवक सिर्फ खरबूजे की फसल तक ही सीमित रहता है। तरबूजे की समान इस उत्तर जीविता मिट्टी, रोगी पौधों के अवशेषों एवं बीजों पर बनी रहती है। जो तापमान फसल की बढ़वार के लिए अनुकूल होता है, वही कवक की वृद्धि एवं रोग के लिए भी उपयुक्त होता है। औसत 21° सेल्सियस तापमान रोग के लिए अनुकूल होता है।

नियंत्रण– इस रोग का प्रबंध तरबूज के ग्लानि रोग के समान ही है।

खीरे की ग्लानि रोग

इस रोग के कारण बीजों के सड़ने एवं खेतों में ग्लानि के लक्षण आते है, जिसका वर्णन पहले किया जा चुका है।

फ्यूजेरियम जड़ विगलन

पहचान– रोग ग्रसित पौधों के लक्षण उपर्युक्त वर्णित ग्लानि रोगों से काफी मिलते–जुलते हैं। परन्तु इस रोग के आक्रमण से पौधे शीघ्र ही मुरझाकर सुखने लगते है। जमीन की सतह के पास तने का भाग मुलायम होकर सड़ने लगता है। पौधे को उखाड़कर देखने पर जमीन के नीचे को सभी भाग सड़े हुए होते है। नम मौसम के कवक की बढ़वार दिखाई पड़ती है।

यह कवक मिट्टी, रोगी पौधों के अवशेषों एवं बीजों पर उत्तर जीवी बना रहता है रोग का फैलाव सिंचाई के पानी तथा निराई–गुडाई करते समय कृषि यंत्रों द्वारा होता है। औसतन 28° सेल्सियस तापमान रोग के अनुकूल है।

लक्षण– इस रोग का प्रबंध तरबूज के ग्लानि रोग के भॉति ही है।

बैंगन के रोग

पर्ण चित्ती

लक्षण– पत्तियों पर अनियमित आकार के भूरे रंग के धब्बे बनते है। इन धब्बों के बीच में गोल छल्ले के आकार का निशान होता है कई धब्बे के आपस में मिलने से एक बड़े धब्बे का आकार बनता है। पत्तियाँ पीली हो जाती है। फलों पर बड़े आकार के कुछ धंसे हुए सुखे धब्बे बनते है। बाद में फल पीला होकर गिर जाता है। एक अन्य प्रकार के पर्ण चित्ती रोग में धब्बा आकार में काफी बड़ा और गोल दिखायी पड़ता है। उसका रंग गहरा भूरा या मटमैला होता है। कुछ छोटे धब्बे, लाल या भूरे और कभी–कभी गहरे रंग की रेखा से घिरे होते है। इन धब्बों के बीच में कवक के काले बिन्दुओं की वृद्धि स्पष्ट दिखायी पड़ती है। रोग ग्रस्त पौधे के फल सड़ने लगते है। रोगी फलों से प्राप्त बीज पर भी रोगजनक जीवित रहते है। भूमि सतह के पास पत्तियों पर कवक सबसे पहले आक्रमण करता है। रोग का फैलाव खेतों में हवा, पानी और कीटों द्वारा होता है।

नियंत्रण

1. फसल कटाई तथा गड़ाई के बाद रोगी पौधों के अवशेषों को इकट्ठा करके नष्ट कर देना चाहिए।
2. तीन वर्ष का फसल चक्र अपनाना चाहिए।
3. बीज को स्वस्थ पौधों से ही प्राप्त करना चाहिए।
4. बीज का उपचार गर्म पानी (50° सेल्सियस) में 30 मिनट तक भिगोकर कर लेना चाहिए।

5. कवकनाशी जैसे मैंकोजेब 2.5 किग्रा. कापर आक्सीक्लोराइड 3 किग्रा. का 1000 लीटरपानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखायी पड़ते ही कर देना चाहिए। कुल 3–4 छिड़काव 10–15 दिन के अंतराल पर करना चाहिए। शेष उपाय फोमाप्सिस फल विगलन रोग के समान है।

फोमाप्सिस अंगमारी तथा फल विगलन रोग

यह बैंगन का प्रमुख रोग है। इस रोग के कारण फसल को प्रत्येक वर्ष बड़ी मात्रा में क्षति होती है। इस रोग का प्रभाव विशेष रूप से बीज उत्पादन वाली फसल पर होती है।

लक्षण– इस रोग का प्रकोप बीज को पौधशाला में बोने से लेकर फल पकने तक किसी भी समय हो सकता है। अतः रोग के लक्षण तीन रूपों में दिखायी पड़ते हैं– (1) पौधशाला में आर्द्र पतन के रुप में (2) पौध लगाने के बाद खेत में अंगमारी (झुलसा) के रूप में तथा (3) फल लगने के बाद फल सड़न के रूप में। खेतों में लगाई हुई फसलों पर पहले जमीन छूने वाली पत्तियों पर या जमीन के सतह के पास तने पर गोल, मटमैला या भूरे धब्बे का रंग बीज में हल्का होता है और उन पर काले रंग के बिंदू के आकार की कवकीय संरचना दिखायी पड़ती है। जिसे पिक्निडियम कहते है। रोगी पत्तियाँ पीली पड़ कर सुख जाती है। तने का रोगी स्थान सुख जाता है और बाद में सुखा सड़न रोग के लक्षण दिखायी पड़ते है। तेज हवा चलने पर तने की ऊपरी भाग रोगी स्थान से टूटकर नीचे गिर जाता है। रोग का भयंकर रूप फल पर दिखायी देता है। प्रारंभ में फलों पर हल्के पीले गडेढ्दार धब्बे बनते है। जो धीरे–धीरे फैलकर अधिकांश भाग पर फैल जाते है। इन धब्बों के सतह पर पिक्निडियम भी बनते है। फल काले पड़ जाते है और सड़ने लगते है। यह रोग फोमाप्सिस वैक्सेन्स नामक कवक होता है। यह कवक बीज तथा ऊपरी मिट्टी में रोगी पौधों के अवशेषों पर उत्तरजीवी बने रहते है। रोगी फलों से प्राप्त बीजों को बोने से आर्द्रपतन रोग के लक्षण आते है। खेत में रोग का फैलाव वर्षा की बूँदों, कृषि यंत्रों और कीट द्वारा होता है। रोग वृद्धि के लिए आर्द्र मौसम तथा 26° सेल्सियस तापमान अनुकूल होता है।

नियंत्रण

1. बीज का उपचार कवकनाशी जैसे कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू एक ग्राम प्रति किग्रा. बीज की दर से लेना चाहिए। पौध लगाते समय इसी कवकनाशी का आधा ग्राम प्रति लीटर पानी के हिसाब से घोल बनाकर पौध की जड़ों को 20 मिनट तक डुबोना तथा पौध लगाने के लगभग तीन सप्ताह बाद छिड़काव करना चाहिए। इसके लिए 500 ग्राम कवक नाशी का 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करें। इसके अलावा मैंकोजेब का 2.5 किग्रा. हेक्टेयर की दर से भी छिड़काव कर सकते है। 3–4 छिड़काव 10–15 दिन के अन्तराल पर देना चाहिए।
2. गर्मी में गहरी जुताई करनी चाहिए। पौधों के अवशेषों को नष्ट कर देना चाहिए।
3. कम से कम तीन वर्शीय फसल–चक्र (सब्जियों की जगह गेहूँ, धान जैसी फसल लगाएं) अपनाने से रोग का प्रकोप कम हो जाता है।

स्क्लेरोटिनिया

लक्षण– इस रोग का प्रकोप तराई एवं मैदानी क्षेत्रों में नवम्बर के अंतिम सप्ताह से शुरू हो जाता है। तभी इसके लक्षण प्रकट होते है। पत्तियों, तनों एवं डण्ठलों पर सूखे धब्बे उत्पन्न हो जाते है। रोगी स्थान के ऊपर की सभी पत्तियाँ पीली हो जाती है तथा बाद में झड़ कर नीचे गिर जाती है या सूख जाती है। यदि रोग का जमीन के सतह के ऊपर मुख्य तने पर हुआ है, तो सारा पौधा सुख कर नष्ट हो जाता है। रोगी स्थान पर सफेद रुई के गुच्छे के समान कवक की बढ़वार दिखायी देती है। रोगी सूखे तनों को फाड़कर देखा जाए तो अन्दर की तरफ कवक की कड़ी बेलनाकार संरचना (स्क्लेरोशियम) दिखायी देता है। स्क्लेरोशियम कवक की सुशुप्तावस्था होती है। फलों पर इसका प्रकोप काफी होता है। रोगी फलों पर रोग का लक्षण पहले छोटे सूखे दाग के रूप में आता है। फिर कवक गूदे में तेजी से बढ़ती है और पूरे फल को सड़ा देती है। रोगी फलों की सतहों पर स्क्लेरोशियम बड़े आकार के और अधिक संख्या में बनते है। यह रोग गाजर, मिर्च, टमाटर आदि फसलों में भी पाया जाता है। इसके लिए नमी की उपस्थिति आवश्यकता है। रोग के प्रारंभिक लक्षण के लिए प्रकाश $15–21^{\circ}$ सल्सियस तापमान तथा 80 प्रतिशत से अधिक नमी अनुकूल होते है। रोग का फैलाव खेतों में हवा तथा पानी द्वारा होता है।

नियंत्रण

1. फसल समाप्त होने पर फसल अवशेषों को एकत्र करके नष्ट कर देना चाहिए।
2. गर्मियों में खेत की गहरी जुताई इस प्रकार से ही जाए कि ऊपरी मिट्टी नीचे दब जाए।
3. जहाँ संभव हो, कुछ समय के लिए खेत में पानी भर देना चाहिए। धान की फसल लेनी चाहिए। इससे रोग की व्यापकता कम हो जाती है।
4. तीन वर्ष का फसल–चक्र अपनाएँ जिसमें चुकन्दर, प्याज, पालक व मक्का लेना चाहिए।

5. फसल लगाने के पूर्व खेत में थायरम 3.0 किग्रा. प्रति हेक्टेयर की दर से मिलाना चाहिए।
6. कार्बेन्डाजिम 50 डब्ल्यू. पी. कवकनाशी एक किग्रा. 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करना चाहिए। पहला छिड़काव रोग के लक्षण दिखने के तुरंत बाद शुरू कर देना चाहिए।

लघु पत्र रोग

पहचान– इस रोग के कारण पत्तियों पतली, दुबली, मुलायम तथा चिकनी होती है। इनका रंग पीला होता है। बाद में आने वाली सभी नई पत्तियों का आकार और भी छोटा हो जाता है। रोगी पौधे झाड़ीनुमा दिखायी पड़ते हैं और उनमें फूल नहीं बनते है। यदि बनते भी है तो हरे रंग के हो जाते है और फल बिल्कुल नहीं लगते है।

नियंत्रण

1. रोगी पौधों को उखाड़कर नष्ट कर देना चाहिए।
2. खेत से खरपतवारों को साफ कर देना चाहिए। खेत के आसपास रोग ग्राही खरपतवार नहीं होने चाहिए।
3. रोग वाहक कीटों के नियंत्रण के लिए आक्सीमिथाइल डिमोटान (मेटासिस्टॉक) या डायेथोएट (रोगार) कीटनाशी का एक लीटर 1000 लीटर पानी में घोल बनाकर प्रति हेक्टेयर की दर से छिड़काव करने से रोग की व्यापकता में कमी आती है। कुल 3–4 बार छिड़काव 15–20 दिन के अंतराल पर करना चाहिए। फल तोड़ने के लगभग 25–30 दिन पूर्व का छिड़काव बंद कर देना चाहिए।

निष्कर्ष

सब्जियों की खेती में कई तरह की समस्याएँ जैसे कीड़ों तथा रोगों के प्रकोप के फलस्वरूप 10–30% हानि होती है तथा कभी–कभी शत प्रतिशत फसल इसने बर्बाद हो जाते हैं। उग्ररूप धारण कर लेने पर रोगों पर नियंत्रण पाना कठिन होता है। वहीं पैदावार व गुणवत्ता पर कुप्रभाव पड़ता है। बैंगन की फोमोस्सम एवं अंगमारी था मिर्च एवं सेम वर्गीय फसलों में एन्थ्रेकनोज घातक बीमारियाँ हैं, जो बीज को संक्रमित कर अगली फसल को भी हानि पहुचाती है। अतः यह आवश्यक है कि इनका निदान उचित समय पर किया जाए। अनुशंषित मात्रा से कम रसायनों का प्रयोग जहाँ रोगों में प्रतिरोधक क्षमता पैदा करता है। अतः कीटनाशक अथवा रोगनाशक दवाओं का प्रयोग करते समय पूरी सावधानी बरतनी चाहिए।

दूध की बहे धार, जब चारा की चले बयार।
मेरी धरती करे पुकार। हरी घास मेरा श्रृंगार।

अन्ना प्रथा हटानी है-हरियाली बढ़ानी है
जमीं की लिबास - हरे-शुष्क घास।

नीचे खाद ऊपर बीज-कृषि में समझों यह चीज।
यदि करना है भू-संवर्धन, अपनाओं भू-जल संरक्षण।

उत्तम चारा, सही प्रबंधन।
तभी होगा कृषि एवं पशुपालन का गठबंधन।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये अरहर की उपयुक्त प्रजातियाँ एवं उत्पादन तकनीक

डॉ. एस.के. वर्मा, चारूप्रिया चौहान[1], आनन्दी[1] एवं अमित कुमार गौर[1]

सारांश : बुन्देलखण्ड क्षेत्र में लगभग प्रतिवर्ष सूखे जैसी स्थिति बनी रहती है तथा यहाँ की कृषि पूर्ण रूप से वर्षा पर आधारित है साथ ही इस क्षेत्र में सिंचाई का कोई भी साधन उपलब्ध नहीं है। इस क्षेत्र में कृषि को लाभकारी बनाने के लिये अरहर जैसी दलहनी फसलों को उगाया जाना बेहद लाभकारी होगा। अरहर की अगेती प्रजातियों जोकि लगभग 4.5–5 माह में पककर तैयार हो जाती है तथा कम से कम नमी होने पर भी उगायी जा सकती है को इस क्षेत्र में सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है तथा किसानों की आय में वृद्धि की जा सकती है।

प्रस्तावना

बुन्देलखण्ड देश का ऐसा क्षेत्र है जहाँ साल दर साल पानी की भारी कमी रहती है। बुन्देलखण्ड में कुल 13 जिले सम्मिलित है जिनमें से 7 उत्तर प्रदेश तथा 6 मध्य प्रदेश राज्य में है। इस क्षेत्र की जलवायु अर्धशुष्क है। यहाँ पर गर्मी के दौरान अधिकतम तापमान 48–49 डिग्री सेन्टीग्रेट तक पहुँच जाता है तथा वायु में नमी की मात्रा काफी कम लगभग 20–25 प्रतिशत तथा औसत वर्षा काफी कम लगभग 50–60 सेन्टीमीटर तक होती है। इस क्षेत्र में पानी की भारी कमी लगभग वर्ष भर ही बनी रहती है। यहाँ की कृषि पूर्ण रूप से वर्षा आधारित है जिस कारण जब तब किसानों को सूखे जैसी समस्याओं का सामना करना पड़ता है तथा फसलों की उत्पादकता काफी कम रहती है। बुन्देलखण्ड क्षेत्र में ऐसी फसलों जिनकी पानी की आवश्यता काफी कम है जैसे ज्वार, बाजरा एवं दलहनी फसलों को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है।

दलहनी फसलों विशेषकर अरहर की जड़े मिट्टी में काफी गहराई तक जाती है तथा बहुत कम पानी की आवश्यकता होने के कारण अरहर की फसल को सफलतापूर्वक उगाया जा सकता है। वैसे तो अरहर की फसल लगभग 8–9 माह में पककर तैयार होती है लेकिन वर्तमान में अगेती अरहर की विभिन्न किस्मों का देश के विभिन्न भागों में विकास किया जा चुका है जोकि लगभग 4.5–5 माह में पककर तैयार हो जाती है। यदि अगेती अरहर की किस्मों को बुन्देलखण्ड क्षेत्र में उगाया जाता है तो जून के द्वितीय पखवाड़े में मानसूनी बरसात की शुरूआत के साथ बुवाई कर नवम्बर माह के मध्य तक फसल की कटाई की जा सकती है तथा अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है।

बुन्देलखण्ड क्षेत्र के लिये उपयुक्त अरहर की कम अवधि की विभिन्न प्रजातियों का विवरण निम्नवत् है–

टाईप 1

अरहर की इस प्रजाति का विकास कानपुर में हुआ था। यह प्रजाति लगभग 160–165 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इस प्रजाति के पौधे ऊँचे, कम फैलने वाले होते है तथा इस प्रजाति में फूल एवं फलियाँ तीन से चार बार में आती है। इस प्रजाति के दाने हल्के भूरे रंग के तथा आकार में छोटे होते है। इसकी पैदावार 12–15 कुन्तल प्रति हैक्टेयर होती है।

यू.पी.ए.एस. 120

इस प्रजाति का विकास गो.ब.प.कृ. एवं प्रौ.वि.वि., पन्तनगर द्वारा किया गया। यह प्रजाति 130–140 दिन में पककर तैयार हो जाती है। इसके मध्यम ऊँचाई वाले, कम फैलने वाले तथा तीन–चार बार में फूल एवं फलियाँ देने वाले होते है। इस प्रजाति की कटाई के बाद गेहूं की बुवाई सफलापूर्वक की जा सकती है। इसकी औसत पैदावार 14–15 कुन्तल प्रति हैक्टेयर होती है।

प्रभात

इस प्रजाति का विकास चन्द्रशेखर आजाद कृषि विश्वविद्यालय द्वारा किया गया। इसके पौधे छोटे, बिल्कुल ना फैलने वाले तथा एक बार में ही फूल एवं फली देने वाले होते है। यह प्रजाति ज्वार बाजरा के साथ मिलवा खेती के लिये अत्यन्त उपयुक्त है। इस प्रजाति की औसत पैदावार 12–13 कुन्तल प्रति हैक्टेयर है।

ए.एल. 201

इस प्रजाति का विकास पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा किया गया। इसके पकने की अवधि 125–130 दिन है। दानों का आकार छोटा लगभग 7 ग्राम0/100 दाने है। पौधे मध्यम लम्बाई के तथा तीन–चार बार में फूल एवं फली देने वाले होते है। इसकी औसत उपज 12–14 कुन्तल/हैक्टेयर है।

प्राध्यापक, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग, E-mail – sk_pantvarsity@yahoo.co.in
[1]*रिसर्च स्कालर, आनुवांशिकी एवं पादप प्रजनन विभाग*

पारस

यह प्रजाति अल्प अवधि में पकने वाली प्रजाति है जो लगभग 120–125 दिनों में पककर तैयार हो जाती है। इस प्रजाति का विकास चौधरी चरण सिंह विश्वविद्यालय, हिसार द्वारा किया गया है। इसकी औसत उपज 12–14 कुन्तल/हैक्टेयर है।

पी.ए.यू. 881

यह प्रजाति पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना द्वारा विकसित की गयी है। इसके पकने की अवधि 120–125 दिन तथा औसत पैदावार 12–13 कुन्तल/हैक्टेयर है। इसकी कटाई के बाद गेहूं की फसल सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

पूसा 2002

इस प्रजाति का विकास भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली द्वारा किया गया है। यह एक जल्दी पकने वाली प्रजाति है तथा अरहर–गेहूं फसल चक्र के लिये उपयुक्त है। इसके पकने की अवधि 125–130 दिन तथा औसत पैदावार 16–17 कुन्तल/हैक्टेयर है।

पंत अरहर 291

इस प्रजाति का विकास गो0ब0 पन्त कृषि एवं प्रौद्योगिकी विश्वविद्यालय द्वारा किया गया है। इस प्रजाति के पकने की अवधि 140–150 दिन तथा औसत पैदावार 15–16 कुन्तल/हैक्टेयर है। इसके दाने मध्यम आकार के होते है जिसके 100 दानों का भार 8.2 ग्राम है। इस प्रजाति की कटाई के बाद गेहूं की फसल सफलतापूर्वक उगायी जा सकती है।

पंत अरहर 6 (पी.ए. 421)

अगेती अरहर की यह नवीनतम प्रजाति है जो देश के उत्तरी पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में खेती के लिये पन्तनगर कृषि विश्वविद्यालय द्वारा वर्ष 2019 में विकसित की गयी। इस प्रजाति की औसत पैदावार 17–20 कुन्तल/हैक्टेयर है। इसके दाने लालिमा लिये भूरे रंग के तथा मध्यम आकार के है तथा 100 दानों को भार लगभग 8.11 ग्राम है। यह प्रजाति अरहर में लगने वाले विभिन्न कीटों के लिये मध्यम अवरोधी तथा फाईटोप्थोरा स्टेम ब्लाईट नामक बिमारी के लिये अवरोधी है। साथ ही यह प्रजाति अरहर–गेहूं फसल चक्र के लिये उपयुक्त है।

अरहर की बुवाई की नवीनतम वैज्ञानिक विधि

यदि उपरोक्त प्रजातियों को किसान भाईयों द्वारा वैज्ञानिक विधि से उगाया जाता है तो निश्चित रूप से अधिक उपज प्राप्त की जा सकती है। अरहर को वैज्ञानिक विधि से उगाने का विवरण इस प्रकार है–

जलवायु

अगेती अरहर की बुवाई हेतु उष्ण एवं उपोष्ण कटिबंधीय जलवायु की आवश्यकता होती है। अरहर के बीजो को अंकुरण हेतु 30–40 डिग्री सेल्सियस एवं फूल तथा फली के विकास हेतु लगभग 25–30 डिग्री सेल्सियस तापमान की आवश्यकता होती है। अरहर की फसल के लिये जल भराव अत्यन्त हानिकारक होता है। अतः खेत में जल निकास की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

खेत का चयन/भूमि की तैयारी

अरहर की बुवाई हेतु अच्छी तरह से बलुई दोमट मिट्टी जिसका पी.एच. 7 के आस–पास होना चाहिए। यह फसल क्षारीय एवं अम्लीय भूमि में उगाये जाने के लिए उपयुक्त नहीं होती है। बुवाई से पहले एक बार सिंचाई अवश्य कर ले ताकि बीज का जमाव एक समान हो सके। तत्पश्चात् दो–तीन हेरो कर पाटा लगाना चाहिए।

बीज उपचार

प्रति किग्रा. बीज को 2 ग्राम थाईरम + 1 ग्राम बेविस्टिन से उपचारित करें। यदि सम्भव हो तो राइजोबियम + पी.एस.बी. + पी.जी.पी.आर. कल्चर की 20 ग्राम से प्रति किग्रा. बीज उपचारित करें।

बुवाई का समय

इस फसल की बुवाई का उचित समय जून के द्वितीय पखवाड़े से जुलाई का प्रथम पखवाड़ा है।

बीज की दर/बुवाई की प्रणाली

इस फसल की बुवाई हेतु प्रति हैक्टेयर 12–15 किग्रा बीज की आवश्यकता होती है। बुवाई लाइनों में करनी चाहिए। लाईन से लाईन की दूरी 45 से 60 सेंटीमीटर एवं पौधे से पौधे के दूरी 15–20 सेंटीमीटर होनी चाहिए।

उर्वरक की मात्रा/समय

आखरी जुताई से पूर्व 100 किग्रा डी0ए0पी0 या 150 किग्रा एन.पी.ए. मिश्रण (12:32:16)/हैक्टेयर की दर से खेत में अच्छी तरह मिला देना चाहिए। यदि खेत में सल्फर की कमी हो तो मिट्टी में फास्फोरस एस.एस.पी. के द्वारा डाली जा सकती है।

खतपतवार नियंत्रण

अरहर की फसल में खतपतवारों का नियंत्रण प्रथम 45 दिनों में किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। इस हेतु पहली निराई 25–30 दिनों में तथा दूसरी निराई 45–50 दिनों में अवश्य कर लेनी चाहिए। बेहतर खतपतवार नियंत्रण हेतु बुवाई के तुरन्त बाद 3.3 ली. पेन्डीमिथालीन नामक रसायन को 500–600 लीटर पानी में मिलाकर छिड़काव कर देना चाहिए।

रोग एवं कीट नियंत्रक

अरहर की फसल पर विभिन्न प्रकार के रोगों एवं कीटों का प्रकोप होता है जिससे उत्पादकता में भारी कमी आती है। कभी–कभी देखने में आया है कि यदि समय पर रोग एवं कीट नियंत्रण ना किया जाये तो पूरी की पूरी फसल बरबाद हो सकती है।

फाईटोपथोरा स्टेम बलाईट

यह बीमारी यदि शुरूआती अवस्था में लगभग 20–25 दिनों में प्रकट हो जाये तो पौधों की मृत्यु तक हो सकती है जिससे भारी नुकसान होता है। लेकिन यदि बीमारी के लक्षण फसल के बड़े होने पर प्रकट हो तो नुकसान कम होता है। इस बीमारी में जमीन की सतह से 20–25 सेंटीमीटर ऊपर पौधे के तने में गाँठें पड़ जाती है जहाँ से पौधा तेज हवा चलने की स्थिति में टूट जाता है। इस बीमारी की रोकथाम के लिये रोडोमिल 5 ग्राम/किग्रा. की दर से बीजोपचार करना लाभकारी होता है।

मारूका कीट

उत्तरी पश्चिमी भारत में अगेती अरहर की फसल को नुकसान पहुँचाने वाला यह सबसे प्रमुख कीट है। इसका प्रकोप पौधे में फूल आने के समय होता है। कीट द्वारा पुष्पगुच्छ के चारों तरफ जालानुमा संरचना बना दी जाती है जिससे फूलों का विकास बाधित होता है एवं वो खिल नहीं पाते तथा फलियाँ भी बहुत कम मात्रा में बन पाती है। इस कीट की रोकथाम के लिये इण्डोक्साकार्प नामक रसायन का 500 मिली/हे. या फिफरोनिल 1 ली/हे. 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। प्रथम छिड़काव के 10–12 दिन पश्चात् दूसरा छिड़काव इस कीट की रोकथाम के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है।

फली भेदक

इस कीट का प्रकोप पुष्प की कली बनने की अवस्था पर होता है। व्यस्क कीट द्वारा छोटी बन रही कलियों में अण्डे दिये जाते है जिनसे निकलने वाला लारवा नई बन रही फलियों के अन्दर दानों को खाकर नुकसान पहुँचाते रहते है। एक दाने को खाकर सूंडी दूसरी फली में बन रहे दाने को खाकर नुकसान पहुँचाती है। इस कीट की रोकथाम के लिये इण्डोक्साकार्प नामक रसायन का 500 मिली/हे. या फिफरोनिल 1 ली/हे. 500–600 लीटर पानी में घोलकर छिड़काव करना चाहिए। प्रथम छिड़काव के 10–12 दिन पश्चात् दूसरा छिड़काव इस कीट की रोकथाम के लिये अत्यन्त लाभकारी होता है।

अपेक्षित उपज

यदि किसान भाईयों द्वारा अरहर की उपयुक्त प्रजाति को वैज्ञानिक विधि से उगाया जाता है तथा रोगों एवं कीटों के रोकथाम की उचित व्यवस्था की जाती है तो प्रति हैक्टेयर लगभग 15–16 कुन्तल उपज प्राप्त की जा सकती है।

निष्कर्ष

दलहनी फसलों में अरहर का विशेष स्थान है। अरहर की दाल में लगभग 20–21 प्रतिशत तक प्रोटीन पाई जाती है, साथ ही इस प्रोटीन का पाच्यमूल्य भी अन्य प्रोटीन से अच्छा होता है। अरहर की दीर्घकालीन प्रजातियॉ मृदा में 200 किग्रा. तक वायुमण्डलीय नाइट्रोजन का स्थरीकरण कर मृदा उर्वरकता एवं उत्पादकता में वृद्धि करती है। शुष्क क्षेत्रों में अरहर किसानों द्वारा प्राथमिकता से बोई जाती है। असिंचित क्षेत्रों में इसकी खेती लाभकारी सिद्ध हो सकती है क्योंकि गहरी जड़ के एवं अधिक तापक्रम की स्थिति में पत्ती मोड़ने के गुण के कारण यह शुष्क क्षेत्रों में सर्वउपयुक्त फसल है।

मर रहा सीमा पर जवान और खेतों में किसान।
कैसे कह दूँ दुःखी मन से कि मेरा भारत महान।।

लोग कहते है कि बेटी मार डालोगे, तो बहू कहाँ से पाओगे?
जरा सोचों, किसान को मार डालोगे, तो रोटी कहाँ से लाओगे?

कोई परेशान है सास-बहू के रिश्तों में।
किसान परेशान है कर्ज की किश्तों में।।

रोजगार और पोषण की संभावना के लिए सोयाबीन पर आधारित उद्यम

डॉ. ललन के. सिन्हा एवं डॉ. (सुश्री) नीरजा ललन

सारांश : सोयाबीन वनस्पति प्रोटीन का एक उत्कृष्ट स्रोत होने के साथ ही भारत में एक महत्वपूर्ण खाद्य फसल भी है। इसे "गोल्डन बीन" के रूप में जाना जाता है क्योंकि इसमें 40 प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता वाला प्रोटीन, 20 प्रतिशत वसा तथा भरपूर मात्र में पोलीअनसेचुरेटेड फैटी एसिड के साथ विटामिन और खनिज होते हैं। इसके अतिरिक्त, इसमे स्वास्थ्य को बढ़ावा देने वाले फाईटोकेमिकल तथा अच्छी गुणवत्ता वाले आहार फाइबर प्रचुर मात्रा में होते हैं, जो मानव शरीर को मधुमेह से लड़ने में सक्षम बनाता है।

प्रस्तावना

भारत में सोयाबीन की वृद्धि पिछले साढ़े चार दशकों के दौरान अभूतपूर्व रही है और भारत वैश्विक स्तर पर उत्पादन में पाँचवें स्थान पर है। भारत में मध्य प्रदेश, महाराष्ट्र, राजस्थान, कर्नाटक और आंध्र प्रदेश सोयाबीन उगाने वाले प्रमुख राज्य हैं। मध्य प्रदेश में सोयाबीन का कुल क्षेत्रफल का लगभग 57 प्रतिशत और देश के कुल उत्पादन में इसका लगभग 65 प्रतिशत का योगदान है। इसलिए इसे सोया राज्य के रूप में घोषित किया गया है। सोया आधारित खाद्य उत्पाद विभिन्न भारतीय खाद्य व्यंजनों में बहुत अच्छी तरह से फिट हो सकते हैं बशर्ते यह ठीक से संसाधित और मिश्रित हो। मध्य प्रदेश भारत का सबसे बड़ा सोयाबीन उत्पादक राज्य है। भारत में प्रोटीन–कैलोरी कुपोषण से निपटने के लिए पौष्टिक सोया उत्पादों के महत्व को समझते हुए और उद्यमिता विकास प्रशिक्षण के माध्यम से पोषण सुरक्षा, आजीविका और आय सृजन के लिए भारतीय कृषि अनुसंधान परिषद द्वारा सोयाबीन प्रसंस्करण और उपयोग पर उत्कृष्टता केन्द्र की स्थापना सेंट्रल इंस्टीट्यूट ऑफ एग्रीकल्चर इंजीनियरिंग, भोपाल में की गयी।

कुटीर स्तर पर मूल्य वर्धित खाद्य उत्पादों के लिए सोया उद्यम

मध्य प्रदेश में स्थित सोयाबीन प्रसंस्करण और उपयोग पर उत्कृष्टता केन्द्र सोया खाद्य पदार्थों के विनिर्माण और विपणन के लिए सोया प्रसंस्करण इकाई स्थापित करने के लिए भविष्य में बनने वाले उद्यमियों को बढ़ावा देने हेतु नियमित सोयाबीन प्रसंस्करण पर छह दिवसीय उद्यमिता विकास कार्यक्रम की। केन्द्र सोया खाद्य पदार्थों के आर्थिक और स्वास्थ्य लाभों के बारे में जागरूकता के निर्माण की प्रक्रिया में तेजी लाने के लिए सभी प्रयास कर रहा है ताकि सोया उद्यम न केवल आय सृजन संबंधी गतिविधियाँ प्रदान करे बल्कि बेरोजगार लोगों को आजीविका के अवसर भी प्रदान करे। यह न केवल उद्यमी को रोजगार के अवसर बल्कि कुछ और व्यक्तियों को भी आय सृजन संबंधी गतिविधियाँ प्रदान करेगा और क्षेत्र में पोषक सोया उत्पादों को उपलब्ध कराकर कुपोषण के उन्मूलन में मदद करेगा। उत्कृष्टता केन्द्र ने तो बहुतेरे मूल्य वर्धित खाद्य पदार्थों व मशीनरी का विकास किया है। शुरूआत में तो इन खाद्य पदार्थों की स्वीकार्यता भारतीय लोगों में धीमी गति से बढ़ रही थी लेकिन अब इनकी माँग लगातार बढ़ती जा रही है। सोया आधारित खाद्य उत्पाद विभिन्न भारतीय खाद्य व्यंजनों में बहुत अच्छी तरह से फिट हो सकते हैं बशर्ते यह ठीक से संसाधित और मिश्रित हो। 1995 से अब तक उद्यमिता विकास प्रशिक्षण प्रदान किये गये। 2500 प्रतिभागियों में से देश भर में लगभग 200 कुटीर स्तरीय सोया उद्यम की स्थापना की गई हैं। सोया आधारित विभिन्न खाद्य पदार्थों में से चार प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी:– सोया दूध और टोफू (सोया पनीर), पूर्ण वसा सोया आटा, सोया आधारित बिस्कुट और केक और सोया नट्स का विवरण नीचे दिया जा रहा है।

सोया दूध और टोफू (सोया पनीर) के लिए प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी

सोया दूध गाय के दूध का एक पौष्टिक विकल्प है। यह कोलेस्ट्रॉल से मुक्त है, जो अन्यथा पशु उत्पादों में मौजूद है। लैक्टोज की अनुपस्थिति यह लैक्टोज असहिष्णु लोगों के लिए उपयुक्त आजीवन उत्पाद बनाती है। ठीक से संसाधित सोयामिल्क और इसके डेरिवेटिव कई न्यूट्रास्यूटिकल और स्वास्थ्य लाभ प्रदान करते हैं और व्यापक रूप से ओरिएंट में उपयोग किए जाते हैं। सोयामिलक का उपयोग लगभग किसी भी तरह से किया जा सकता है, जिसमें डेयरी दूध का उपयोग किया जाता है। सोया डेयरी एनालॉग्स प्रोसेस्ड सोयामिल्क और इसके विभिन्न डेरिवेटिव्स जैसे टोफू, फ्लेवर्ड मिल्क और पेय पदार्थ, दही/दही और डेरिवेटिव, आइसक्रीम आदि से बने हो सकते हैं। ओरिएंट में टोफू के रूप में लोकप्रिय सोया पनीर एक जापानी उत्पाद है, जो कोएग्युलेट करके बनाया जाता है। कैल्शियम या मैग्नीशियम नमक के साथ सोयाबीन दूध और आमतौर पर एक शाकाहारी खाद्य सामग्री के रूप में उपयोग किया जाता है। यह एक सफेद, नरम, जिलेटिनस द्रव्यमान है, जिसमें सामान्य रूप से 78% नमी होती है। सोया दूध और टोफू (सोया पनीर) बनाने की प्रक्रिया बहुत सरल है।

प्रधान वैज्ञानिक पूर्व मुख्य तकनीकी अधिकारी और प्रशिक्षण समन्वयक (महिला प्रशिक्षण), सोयाबीन प्रसंस्करण और उपयोग पर उत्कृष्टता केन्द्र आईसीएआर–केन्द्रीय कृषि अभियांत्रिकी संस्थान, भोपाल–462038

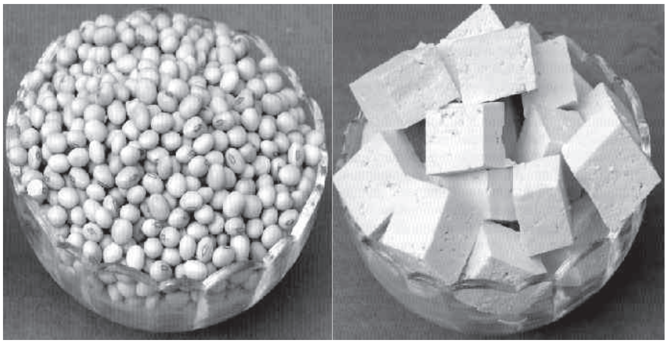

चित्र–1: सोयाबीन एवं टोफू

कुटीर स्तर पर सोयामिल्क प्रसंस्करणः सोयामील अनिवार्य रूप से सोयाबीन का पानी निकालने वाला होता है, और तैयारी के मूल चरण हैंः सोयाबीन का चयन, पानी जोड़ना, गीला पीसना और फाइबर (ओकरा) से सोयामिल्क का अलग होना, लाइपोक्सीजिनेज़ और ट्रिप्सिन अवरोधकों को निष्क्रिय करने के लिए खाना बनाना, निरूपण और दृढ़ीकरण, और सोयामिल्क की पैकेजिंग। सोयामिल्क के उत्पादन की प्रक्रिया में 4 घंटे के लिए सोया विभाजन को भिगोना शामिल है, पीसने से पहले इसे धोना। चक्की सह कुकर भाँप जनरेटर से भाँप लाइन से जुड़ा हुआ है। भाँप को पीसने वाले कक्ष में प्रवाहित किया जाता है ताकि हवा को बाहर निकाला जा सके ताकि इस प्रकार ऑक्सीजन कम वातावरण बना सके। भिगोया हुआ सोया विभाजन (चित्र–1) ग्राइंडर में शीर्ष हॉपर से कुछ गर्म पानी डाला जाता है और पीस शुरू किया जाता है। पीसने के लिए आवश्यक कुल पानी छह से आठ गुना के बराबर होता है प्रति फलियों के साथ सूखी फलियों को गीला किया जाता है और फिर हॉपर के इनलेट को बंद कर दिया जाता है ताकि हवा का कम वातावरण परेशान न हो। पीस 20 मिनट के लिए किया जाता है और चक्की में तापमान को पीसने के अंत में 3 मिनट के लिए 120°C पर बनाए रखा जाता है। सोया घोल को बाद में बाल्टी में निकाल लिया जाता है और मलमल के कपड़े, छिद्रित बेलनाकार कंटेनर के माध्यम से एक विशेष रूप से डिज़ाइन किए गए फ़िल्टर में हल्के दबाव में फ़िल्टर्ड किया जाता है। फ़िल्टर्ड दूध जब गर्म होता है (70° C के आसपास अस्थायी) कोगुलेंट के साथ मिलाया जाता है। मट्ठा हटाने और मनचाहा आकार देने के लिए जमा हुए पदार्थ को मलमल के कपड़े में 30 मिनट तक यांत्रिक प्रेस में दबाया जाता है

सोया मिल्क और पनीर प्लांटः सोइमिल्क और पनीर प्लांट (चित्र 2) में एक स्टीम जनरेटर, एक ग्राइंडर सह कुकर, एक एक्सट्रेक्टर और एक पनीर प्रेस होता है। ये सभी घटक स्टेनलेस स्टील से बने हैं। इस संयंत्र की लागत रुपये के बीच है। निर्माता के आधार पर 2.75 और 3 लाख। इस प्लांट की खास बात यह है कि यह भिगोए हुए बीन्स को ऑक्सीजन मुक्त वातावरण में एक साथ पीसता और पकाता है और इसलिए अंतिम उत्पादों में बीन का स्वाद कम से कम होता है और एक बेहतर गुणवत्ता वाला दूध और पनीर प्राप्त होता है। अलग से पीसने और पकाने की प्रक्रिया की तुलना में आवश्यक प्रक्रिया समय भी काफी कम हो जाता है। संयंत्र 40 मिनट के बैच में 2.5 किलोग्राम सोयाबीन को संसाधित करता है जिसके परिणामस्वरूप 4 से 4.4 किलोग्राम सोया पनीर होता है।

चित्र–2: कुटीर स्तरीय सोया दुग्ध व टोफू संयंत्र

पूर्ण वसा सोया आटा के लिए प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी

प्रोटीन कैलोरी कुपोषण भारतीय लोगों के बीच एक गंभीर स्वास्थ्य चिंता का विषय है क्योंकि हमारे आहार अनाज आधारित हैं। आहार में शामिल अनाज व्यक्तिगत रूप से संतोषजनक विकास, शरीर की मरम्मत और रखरखाव के लिए पर्याप्त अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन और कैलोरी की आपूर्ति नहीं करते हैं। इसलिए, पोषण संबंधी कमियों से जुड़ी समस्याओं को दूर करने के लिए इन आहारों का प्रोटीन अनुपूरण आवश्यक है। यह बताया गया है कि सभी पादप प्रोटीनों में से सोया प्रोटीन अपनी बहुतायत, कम लागत, बेहतर कार्यात्मक गुणों और उत्कृष्ट पोषण गुणवत्ता के कारण सबसे आकर्षक है। पारंपरिक व्यंजनों की तैयारी के लिए किसी भी अनाज या अन्य दाल के आटे के साथ पूर्ण वसा सोया आटा मानव आहार में सोया प्रोटीन का उपयोग करने का सबसे सरल तरीका है। सोया अनाज मिश्रित आटा से व्यंजनों की तैयारी और उपयोग लोगों के पारंपरिक भोजन की आदतों में कोई बदलाव नहीं करता है। अपने पोषण और स्वास्थ्य लाभों के कारण पूर्ण वसा सोया आटा जनता के बीच लोकप्रिय हो रहा है। कुटीर स्तर पर पूर्ण वसा सोया आटा का उत्पादन

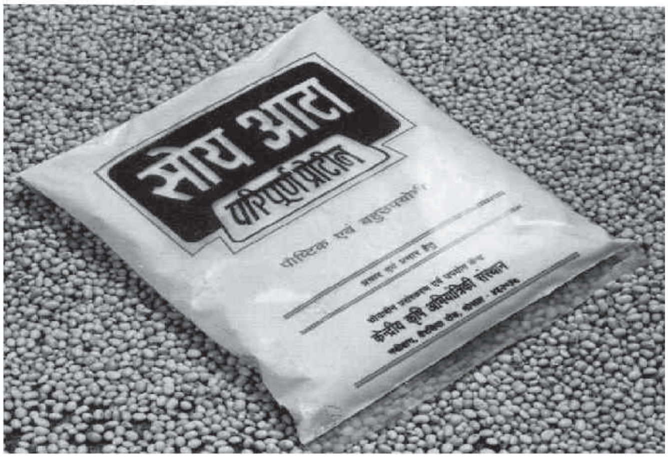

चित्र 4 पूर्ण वसा युक्त सोया आटा

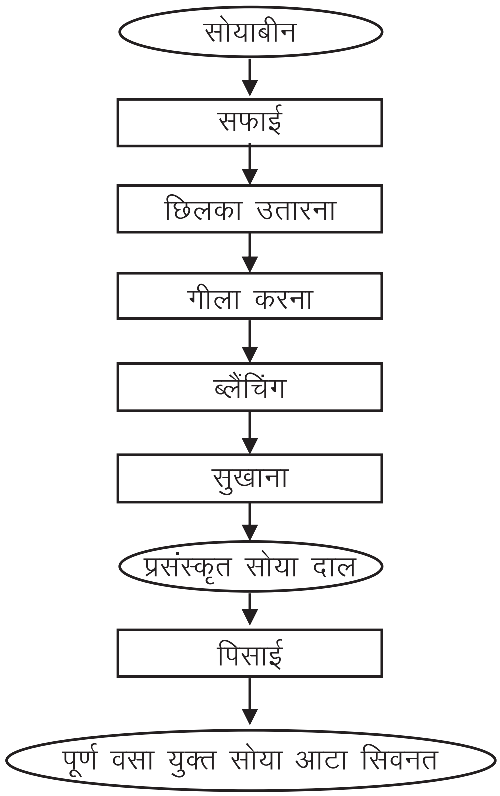

चित्र 5: पूर्ण वसा युक्त सोया आटा के उत्पादन के लिए प्रक्रिया

बहुत सरल है। फुल फैट सोया आटा के लिए प्रोसेस फ्लो चार्ट चित्र 4 और 5 में दिखाया गया है। उत्पादन के लिए क्लीनर और ग्रेडर, डेहलर, ब्लांचर, ड्रायर, ग्राइंडर, आटा सिफ्टर, वजन मशीन / बैलेंस, हीट सीलर, स्टोरेज डिब्बे की आवश्यकता होती है। पूर्ण वसा सोया आटा की। प्रक्रिया में सफाई, Debuling, सोया विभाजन को पानी में भिगोना 1 से 3 के पानी के अनुपात के साथ होता है, 30 मिनट के लिए ब्लांच करना, लगभग 8 प्रतिशत नमी को ब्लांटेड सुखाने, हथौड़ा / बेल मिल में मिलाना, पॉलीथीन बैग में पैकेजिंग (400 गेज और ऊपर) या धातु के कंटेनरों और भंडारण में 3 महीने (यदि आवश्यक हो) और अनाज के साथ उपयोग। फुल फैट सोया आटा (अंजीर 2) के प्रमुख घटक 30–जाल छलनी से गुजर रहे हैं, प्रोटीन 40 प्रतिशत, कार्बोहाइड्रेट 22 प्रतिशत, तेल 20 प्रतिशत, फाइबर 5 प्रतिशत और खनिज 3 प्रतिशत हैं। पॉलिथीन पैकेट में पैक सोया आटा का शेल्फ जीवन एक महीने तक है। हालांकि, पैकेट खोलने के बाद, 15 दिनों के भीतर इसका सेवन करना चाहिए। ऐसे मामले में, जहाँ उपभोक्ता गेहूं के आटे और गेहूं के बंटवारे को एक साथ लेना पसंद करते हैं, जबकि गेहूं के आटे के पूरक के लिए 1 किलोग्राम उपचारित सोया स्प्लिट को 9 किलोग्राम साफ गेहूं में मिलाया जाता है और सोया मिल्क का आटा मिलता है। प्रोटीन सामग्री की वृद्धि के लिए किसी भी पारंपरिक या आधुनिक व्यंजनों में पूर्ण वसा सोया आटा 10 प्रतिशत तक शामिल किया जा सकता है और इसे 20 प्रतिशत तक बढ़ाया जा सकता है। यह आसानी से चपाती, लोई, पराठा, आदि और किसी भी बेकरी के साथ–साथ एक्सट्रूडेड उत्पादों की तैयारी के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है। वैकल्पिक रूप से पूर्ण वसा वाले सोया के आटे को 1ः 1 अनुपात में बेसन के साथ भी मिलाया जा सकता है और पारंपरिक स्नैक फूड जैसे सेव, चकली, पकोड़ा, इत्यादि में इस्तेमाल किया जा सकता है।

सोया युक्त बिस्कुट और केक के लिए प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी

बिस्कुट और केक, जो खाने के लिए तैयार हैं, आकार में सुविधाजनक और कॉम्पैक्ट हैं; अपने पोषक मूल्य को बढ़ाने के लिए अतिरिक्त प्रोटीन से समृद्ध होने में सक्षम हैं। इन उत्पादों की लंबी शैल्फ जीवन और लोकप्रियता को ध्यान में रखते हुए, सोया प्रोटीन के साथ उनके पूरक को उपयुक्त माना गया था और उसी के लिए नुस्खा और उत्पादन तकनीक विकसित की गई थी। बिस्किट और केक बनाने की सामान्य सामग्री आटा, चीनी, छोटा, नमक, दूध, एजेंटों, अंडे और मक्खन हैं। अन्य सामग्री को भी कभी–कभी विविधता के लिए जोड़ा जाता है। अण्डों को जोड़ने से प्राकृतिक रिसाव प्रभाव के कारण मात्रा, स्वाद और स्वाद में सुधार होता है और आनुपातिक रूप से नुस्खा में रासायनिक रिसाव एजेंटों की आवश्यकता को कम करता है। सोयाबीन के पूरक का उद्देश्य बेकरी उत्पादों के पोषण सुधार के लिए है। पोषण संबंधी सुधार के लिए किसी भी भोजन के पूरक को आसानी से अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन युक्त खाद्य कच्चे माल को जोड़कर आसानी से प्राप्त किया जा सकता है।

सोया पूरक बिस्कुट तैयार करने के लिए फॉर्मूला और प्रक्रियाः बिस्कुट लगभग सभी छोटी बेकरियों में हाथ से बनाए जाते हैं और मशीनों का उपयोग यंत्रीकृत संयंत्र में किया जाता है। छोटी इकाइयों में आटा हाथ से तैयार

किया जाता है, शीट के रूप में लुढ़का होता है और मर / बिस्किट कटर की मदद से काटा जाता है। स्क्रैप काम किया जाता है, लुढ़का और पुनः उपयोग किया जाता है। हल्के भूरे रंग तक इलेक्ट्रिक ओवन में बेकिंग सामान्य रूप से की जाती है। बड़े पौधों में आटा एक मिक्सचर में तैयार किया जाता है, जिसे स्टैम्पिंग या रोटरी बिस्किट रोलर की मदद से ढाला जाता है और फिर यात्रा चूल्हा ओवन को बनाया जाता है। हल्के भूरे रंग तक 200–215 डिग्री सेल्सियस पर बिस्कुट ओवन में बेक किए जाते हैं। सामग्री के उचित निर्माण से 30% (बेकर) बिस्कुट और केक के फार्मूले में पूर्ण वसा वाले सोया आटा को शामिल करने के साथ अन्य सामग्री आटा अत्यधिक स्वीकार्य अच्छी गुणवत्ता वाले बिस्कुट का उत्पादन करता है और विनिर्माण प्रक्रिया में बहुत कम परिवर्तन की आवश्यकता होती है और नहीं बेकरी उपकरणों में परिवर्तन। फार्मूला और सोया फोर्टिफाइड बिस्कुट और केक बनाने की प्रक्रिया क्रमशः तालिका 1 और तालिका 2 में दी गई है। बिस्कुट को छोटा करने के लिए और चीनी को एक साथ बेकिंग पाउडर और बेकिंग सोडा के क्रमिक जोड़ के साथ क्रीमयुक्त किया जाता है और दो मिनट धीमी गति से, दो मिनट मध्यम और दो मिनट प्रत्येक उच्च गति पर स्क्रैपिंग के बाद मिलाया जाता है। फिर सोया आटा, पानी और नमक को क्रीमयुक्त द्रव्यमान में मिलाया जाता है और तीनों को कम गति से मिलाया जाता है। अंत में रिफाइंड गेहूं का आटा मिलाया जाता है और 30 सेकंड के लिए 5 सेकंड के अंतराल पर कम गति से मिलाया जाता है। आटे को ठंडा करने के बाद बिस्किट के उपयोग से आटा काट दिया जाता है और 200 डिग्री सेंटीग्रेड पर 15 मिनट के लिए बेक किया जाता है। केक को छोटा बनाने के लिए और चीनी को एक साथ मिलाया जाता है, इसके बाद धीरे–धीरे और इसके अलावा अण्डों को मिलाया जाता है। मिश्रण को घी वाले पैन में डाला जाता है और 30 मिनट के लिए 190 डिग्री सेल्सियस पर। पर्याप्त ठंडा होने के बाद केक को कटा हुआ (5 सेमी • 7.5 सेमी) और ओवन में सुखाया जाता है यदि रस की आवश्यकता होती है।

उत्पाद की गुणवत्ता

सोया फोर्टीफिकेशन न केवल बिस्किट की प्रोटीन सामग्री को बढ़ाता है, बल्कि उत्पादों को पोषण में भी सुधार करता है। सोया पूरक बिस्कुट और केक के लिए प्रति सेवारत पोषक तत्व–प्रोफ़ाइल तालिका 3 में दी गई है। लगभग 5 ग्राम वजन वाले सोया–फोर्टिफाइड बिस्किट में लगभग 0.6 ग्राम प्रोटीन (साधारण बिस्किट से लगभग 50प्रतिशत अधिक), 1.2 ग्राम वसा और 25 कैलोरी होती है। एक दिन में दस बिस्कुट का सेवन करने से 10–12 साल के लड़के को लगभग 13 प्रतिशत प्रोटीन की आवश्यकता पूरी होती है और 210 कैलोरी प्रदान करता है जबकि सोया सप्लीमेंटेड केक रस्क प्रति सेवारत (5 टुकड़े या 45 ग्राम) 18.5 प्रतिशत प्रोटीन और 380 कैलोरी प्रदान करता है जो प्रोटीन की 44 प्रतिशत आवश्यकता को पूरा करता है। और उनके अनुशंसित दैनिक भत्ते की ऊर्जा आवश्यकता का 16 प्रतिशत। वांछित पोषण संतुष्टि स्तर को प्राप्त करने के लिए जानकारी प्रति सेवा मात्रा तय करने में उपयोगी है। अमीनो एसिड प्रोफाइल और पूरक बेकरी उत्पादों की प्रोटीन सामग्री बहुत अच्छी तरह से डब्ल्यूएचओ (द वर्ल्ड हेल्थ ओर्गनाइजेशन) द्वारा सुझाए गए पैटर्न से मेल खाती है जो उच्च अमीनो एसिड स्कोर का संकेत देती है।

तालिका 1: सोयाफाइड बिस्कुट के लिए सूत्र

क्रमांक	सामग्री (अवयव)	मात्रा, प्रतिशत (बेकर प्रतिशत)
1	गेहूं का परिष्कृत आटा (मैदा)	100
2	वसा (वनस्पती)	40
3	शक्कर	40
4	बेकिंग पाउडर	1
5	नमक	1
6	सोडियम बाइकार्बोनेट (बेकिंग सोडा)	0.8
7	पूर्ण वसा युक्त सोया आटा	30
8	पानी (मिलीलीटर)	32

तालिका 2: सोया फोर्टिफाइड केक बनाने का सूत्र

क्रमांक	सामग्री (अवयव)	मात्रा, प्रतिशत (बेकर प्रतिशत)
1	गेहूं का परिष्कृत आटा (मैदा)	100
2	वसा (वनस्पती)	80
3	शक्कर	80
4	बेकिंग पाउडर	1
5	नमक	1
6	अण्डा	130
7	पूर्ण वसा युक्त सोया आटा	30
8	पानी (मिलीलीटर)	20

तालिका 3: 10–12 वर्ष के लड़के के लिए RDI के खिलाफ एक सेवारत पोषक तत्वों और उनके आहार योगदान

क्र.सं.	पोषक तत्व	पोषण-प्रोफाइल*		दैनिक सेवन की सिफारिश (RDI**)	दैनिक आहार में योगदान	
		बिस्कुट	केक		बिस्कुट	केक
1.	ऊर्जा, किलो कैलोरी	210	380	2420	9	16
2.	प्रोटीन, ग्राम	5.5	18.5	42.5	13	44
3.	कैल्शियम, मिलीग्राम	22	42	400	6	11
4.	फास्फोरस, मिलीग्राम	75	137	400	19	34
5.	लोहा, मिलीग्राम	1.4	1.9	25	6	8
6.	जस्ता, मिलीग्राम	0.30	0.31	15	2	2
7.	तांबा, मिलीग्राम	0.13	0.13	1.5	9	9
8.	मैग्नीशियम, मिलीग्राम	27	28	350	8	8
9.	थियामिन, मिलीग्राम	0.08	0.10	1.2	7	8
10.	रायबोलेविन, मिलीग्राम	0.07	0.04	1.5	3	11
11.	यासिन, मिलीग्राम	0.76	0.77	16	5	5

*दैनिक सेवन की सिफारिश के लिय सर्विंग आकारः केक रस्क – 5 टुकड़े या 45 ग्राम।

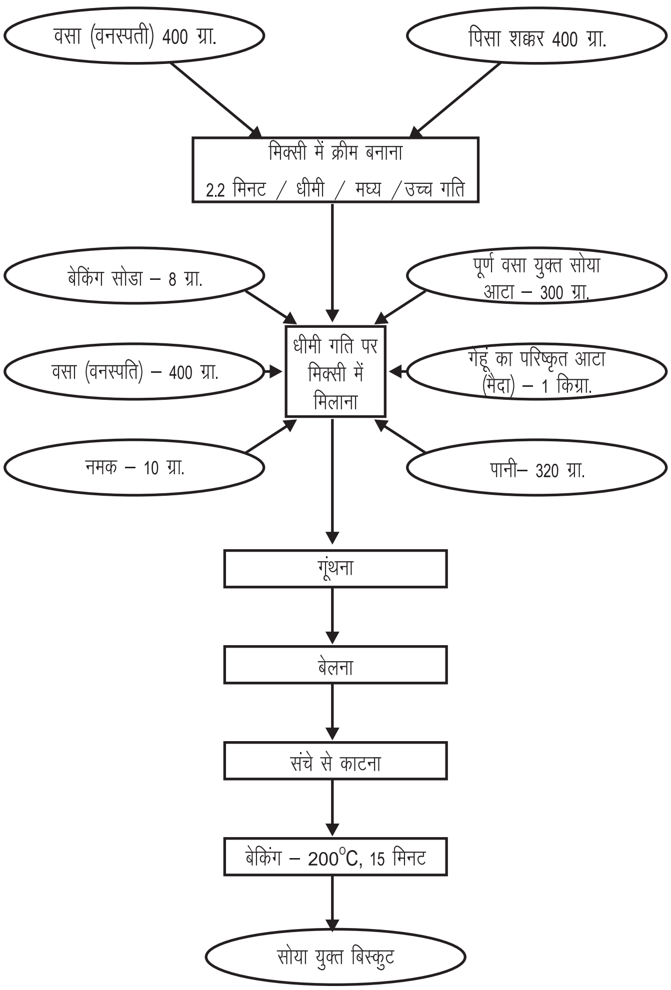

चित्र 3. सोया फोर्टिफाइड बिस्कुट के उत्पादन के लिए प्रक्रिया प्रवाह चार्ट

सोया नट्स के लिए प्रसंस्करण प्रौद्योगिकी प्लांट

सोयाबीन प्रोटीन के सबसे अच्छे स्रोतों में से एक है। इसका उपयोग विभिन्न खाद्य और दवा उद्योगों में एक घटक के रूप में किया जा रहा है। स्नैक फूड में साबुत सोयाबीन का उपयोग चमत्कारिक घटक के रूप में पोषक मूल्य को बढ़ा सकता है

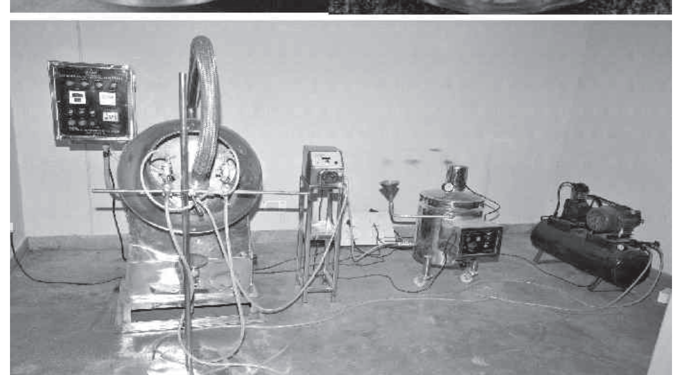

क्योंकि इसमें उच्च गुणवत्ता वाले प्रोटीन का लगभग 40 प्रतिशत और 20 प्रतिशत वसा होता है। यह उपलब्ध पौधे प्रोटीन का कम लागत वाला स्रोत है और समाज के कमजोर वर्गों के लिए सस्ता है। इस तरह के स्नैक फूड प्रोटीन कैलोरी कुपोषण की समस्याओं को कम करने में मदद कर सकते हैं। पौष्टिक भुना हुआ और गहरी वसा वाले तले हुए सोया नट्स में अन्य दालों / फलियों से तैयार किए गए स्नैक खाद्य पदार्थों की तुलना में अच्छी गुणवत्ता वाले प्रोटीन की मात्रा लगभग दोगुनी होती है और प्रति 100 ग्राम नट्स से अधिक 540 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करते हैं। सोया नट्स की एनरोबिंग उत्पाद की स्वीकार्यता को बढ़ाती है। पूरे सोयाबीन और सोया स्प्लिट्स से भुना, डीप फैट फ्राइड और एनरोबड सोया नट्स बनाने की प्रक्रिया भोपाल में अन्य स्थानों पर विकसित की गई है। इस प्रक्रिया में भिगोने, दबाव पकाने, गहरी वसा भूनने या भूनने के बाद एन्रोबिंग शामिल हैं। इन नट्स में लगभग 29.5 प्रतिशत अच्छी गुणवत्ता वाला प्रोटीन और 31.7 प्रतिशत वसा होता है जो कि 100 ग्राम नट्स से 540 किलो कैलोरी ऊर्जा प्रदान करता है। सोया नट्स की खास बात यह है कि यह अन्य दालों / फलियों से तैयार किए गए स्नैक खाद्य पदार्थों की तुलना में प्रोटीन युक्त भोजन को दोगुना करने के लिए पौष्टिक स्नैक फूड प्रदान करता है। उत्पादों के निम्नलिखित फायदे हैं।

1. स्वीकार्य गहरी वसा वाले तले और भुने हुए सोया नट्स गुणवत्ता वाले प्रोटीन के समृद्ध और कम लागत के स्रोत हैं। इस प्रकार, सभी क्षेत्रों की आबादी स्नैक्स के रूप में इसका उपयोग कर सकती है। यह पोषण कार्यक्रमों में विशेष रूप से उपयोगी हो सकता है।
2. विकसित गहरी वसा वाले फ्रायर में पूरे कक्ष में एक समान तापमान प्रोफ़ाइल होती है और यह बेहतर तलने के लिए उपयुक्त है
3. सोया नट्स ग्रामीण क्षेत्र में और साथ ही आर्थिक रूप से कमजोर वर्ग के लिए प्रोटीन और ऊर्जा कुपोषण से निपटने में मदद करेंगे जो आसानी से इसे वहन कर सकते हैं।

सोया नट्स के ऊपर तैयार करने की प्रक्रिया बहुत ही सरल है और किसी भी उद्यमी द्वारा या पारंपरिक रूप से किसी भी महिला द्वारा अपने घरेलू उपभोग के लिए आसानी से की जा सकती है। इससे कुपोषण का मुकाबला करने में मदद मिलेगी।

निष्कर्ष

सोया आधारित उद्यमों को सोया दूध और टोफू (सोया पनीर), सोया आधारित बिस्कुट और केक, सोया नट्स और पूर्ण वसा वाले सोया आटा के प्रसंस्करण के लिए स्थापित किया जा सकता है, जिनकी उपभोक्ताओं के बीच अच्छी स्वीकृति और माँग है। पोषण बढ़ाने के लिए सभी पारंपरिक व्यंजनों में पूर्ण वसा सोया आटा का उपयोग किया जा सकता है। सोया नट्स और सोया पूरक बिस्कुट का सेवन स्नैक फूड के रूप में किया जा सकता है जबकि सोया दूध या टोफू डेयरी एनालॉग्स के रूप में। एक किलोग्राम सोयाबीन से लगभग 6–8 लीटर कोलेस्ट्रोल मुक्त सोयामिलक या 1.5 से 2 किलोग्राम सोया पनीर (टोफू) प्राप्त किया जा सकता है। यह दूध गाय के दूध के बराबर होता है और दही, दही आधारित व्यंजन जैसे श्रीखंड, आम्रखंड, लस्सी, बटर मिल्क या ठंडा स्वाद सोयाबीन बनाने के लिए कच्चे के रूप में बेचा जा सकता है। सभी सोया आधारित खाद्य उत्पाद पौष्टिक हैं और सस्ती कीमत पर उत्पादित किए जा सकते हैं। तकनीकी–आर्थिक व्यवहार्यता लोगों को उच्च गुणवत्ता और कम लागत वाली खाद्य सामग्री प्रदान करने के अलावा वित्तीय पहलुओं से व्यवहार्य प्रतीत होती है। पौष्टिक सोया आधारित खाद्य उत्पादों के उत्पादन के लिए अब तक देश के विभिन्न हिस्सों में लगभग 200 सोया प्रसंस्करण उद्यम स्थापित किए गए हैं। यह न केवल आय सृजन की गतिविधियाँ और आजीविका के अवसर प्रदान कर रहा है, बल्कि क्षेत्र में पोषक सोया उत्पादों को उपलब्ध कराकर कुपोषण के उन्मूलन में भी मदद कर रहा है।

अच्छे नस्ल के पशुधन-कृषक का असली धन।
कृषि पशुधन एक संग-खेती के दोनों ही अंग।

बीज शोधन अपनाओं-रोग व्याधि भगाओं।

*****

Swachh Bharat Abhiyan

स्वच्छ भारत

एक कदम स्वच्छता की ओर

150 YEARS OF CELEBRATING THE MAHATMA

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय

RANI LAKSHMI BAI CENTRAL AGRICULTURAL UNIVERSITY

2014

कृषि सर्व जीवनस्य आधारम्

रानी लक्ष्मी बाई केन्द्रीय कृषि विश्वविद्यालय
झाँसी-284 003 (उ.प्र.) भारत

Darpan Printers & Lamination